अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष: 44, संयुक्तांक: 22-23, 1-31 जुलाई 2021

पैगेसस स्पाईवेयर

जेब में जासूस

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष:44,संयुक्तांक : 22-23, 1-31 जुलाई 2021

अध्यक्ष
चंदन पाल

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **अरविन्द अंजुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. लोकतंत्र के सलीब पर साइबर जासूसी... 3
3. हम जेब में लेकर नहीं घूम सकते हैं अपना... 4
4. सत्य निरपेक्ष होता है!... 6
5. मुझे भी कुछ कहना है, मी लार्ड!... 7
6. राष्ट्रवाद के भीतर पनपता राज्यवाद... 9
7. रिपोर्ट : सर्व सेवा संघ कार्यसमिति... 11
8. नेहरू का इतिहास बोध विराट... 13
9. अधूरी है मिशनरियों के बारे में... 15
10. बीज यात्रा : टिहरी सर्वोदय मंडल... 16
11. अंतहीन है यातना की कहानियां... 17
12. अफगानिस्तान में प्रेम और युद्ध... 20
13. अब साबरमती आश्रम की बारी... 21
14. कोविड से हुई मौतों के सटीक आंकड़े... 23
15. कविता : मैं तुम्हारा कवि हूं... 24

संपादकीय

पेगासस जासूसी : स्वतंत्रता का हरण

पेरिस के पत्रकारों की एक गैर-लाभकारी संस्था "Forbidden Stories" एवं एमनेस्टी इन्टरनेशनल ने 50 हजार फोन नंबरों की एक सूची जारी की और इन नंबरों के फोन टैपिंग की संभावना व्यक्ति की। ये जासूसी का काम पेगासस नामक डिजिटल जासूसी तंत्र किया गया, जिसे इजराइल के एनएसओ ग्रुप की साइबर शाखा द्वारा विकसित किया गया। इस डिजिटल जासूसी व्यवस्था को किसी भी मोबाइल फोन पर बिना फोन के स्वामी की जानकारी के डाला जा सकता है।

वाशिंगटन पोस्ट ने इस सूची में से 67 की जांच करने पर पाया कि इनमें से 37 में पेगासस स्पाईवेयर डाले जाने के स्पष्ट चिन्ह मिले। इस सूची में कई राष्ट्रपतियों एवं प्रधानमंत्रियों के नाम भी थे। वाशिंगटन पोस्ट ने यह भी खुलासा किया कि इन 37 लोगों में से 7 व्यक्ति भारत के थे। एनएसओ ने स्वीकार किया कि इस साफ्टवेयर का दुरुपयोग किया जा सकता है।

भारत में इस बात को लेकर राजनीतिक भूचाल आ गया। ये मामला उच्चतम न्यायालय तक पहुंच गया है। भारत सरकार को सिर्फ एक छोटा-सा बयान देना चाहिए कि पेगासस द्वारा की गयी जासूसी गैर कानूनी है और यदि ये जासूसी गैर कानूनी नहीं है, तो भारत सरकार को यह स्पष्ट करना चाहिए कि इसकी अनुमति किसके द्वारा दी गयी। भारत सरकार को इस जासूसी की जानकारी कब से है।

भारत में इसे दो संदर्भों में समझना होगा। एक, सन् 1990 के बाद जन-संघर्षों से जुड़े मुद्दों के बजाय भटकाने वाले मुद्दे विमर्श में शामिल होते पाये गये। इसमें डिजिटल सूचना-संवाद तंत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। दूसरे, नयी टेक्नोलॉजी, संवैधानिक तानाशाही की ओर ले जाने का माध्यम बन रही है तथा मानवीय व नागरिक स्वतंत्रता का हनन करने वाली है।

पहली बात विमर्श के संदर्भ में। सन् 1990 ई. के बाद, पूंजी के वैश्वीकरण, निजी क्षेत्र के विकास के नाम पर कारपोरेट जगत के वर्चस्व को स्थापित करने का काम तथा पूंजी को सार्वजनिक क्षेत्र से मुक्त कराने की नीति अपनाने का दबाव विश्वबैंक द्वारा डाला गया। फलस्वरूप देश उस रास्ते पर चल पड़ा। राजनीतिक दलों ने इससे ध्यान हटाने के लिए महत्त्वहीन एवं काल्पनिक भय के मुद्दों पर जनता में फूट डालने व वैमनस्य फैलाने के काम के लिए ऐसा दिखावा किया, मानो वे एक बड़ी वैचारिक लड़ाई लड़ रहे हैं। महाकाय कारपोरेट जो वैश्विक पूंजी/धन के तीन-चौथाई हिस्से का नियंत्रण रखते हैं, उन्होंने ऐसे कन्सल्टैन्ट रखे जो इस बात का अध्ययन करते रहते हैं कि जनता को किन मुद्दों पर अधिक से अधिक बांटा जा सकता है। जैसे धर्म, जाति, क्षेत्रीयता, अस्मिता आदि। इन अतिशय धनी कारपोरेट वर्ग के नियंत्रण में अर्थव्यवस्था, मीडिया, शैक्षणिक संस्थाएं एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं के सूत्रधार आदि हैं, जो 'जनमत' का निर्माण करने के माध्यम बन जाते हैं। राजनीतिक विरोधियों को दुश्मन, देश-हित विरोधी एवं बुराई का प्रतीक बताने की शुरुआत इस प्रक्रिया का अंग है। आप असली बुराई के प्रतीक के रूप में विरोधी व्यक्तियों को चिन्हित करें। इस प्रकार समाज में आपके चयन के लिए झूठी एवं अतार्किक प्रक्रिया को स्थापित किया जाने लगा। आप क्या चुनेंगे, यह स्वतंत्रता भी आपके हाथ में नहीं है। नकली बुराई को लक्ष्य बना दिया जाता है, ताकि असली बुराई की ओर आपका ध्यान ही न जाये।

पेगासस जैसी जासूसी तकनीक का उपयोग दुश्मन देश के नेताओं एवं देश के अंदर के विरोधियों की गतिविधियों/संपर्कों को जानने के लिए भी किया जाता है, कभी-कभी ब्लैकमेल करने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है।

समुदायों ने विभिन्न क्षेत्रों में आत्म निर्भरता कैसे खोई, इसे समझ बिना स्वतंत्रता के खोने का अर्थ हम नहीं समझ सकते। पिछले 200 वर्षों से एक नीति चल रही है, जिसके अंतर्गत लोक समुदाय से छिन कर कृषि उत्पादन क्षेत्र, ऊर्जा क्षेत्र तथा अपनी मूल शिल्प-विधा जैसे सिलाई-बुनाई, बढ़ई, लोहारी, हथकरघा जैसे तमाम कारीगर आधारित व्यवसाय निरंतर बड़े उद्योगों एवं प्रकारांतर से कारपोरेट जगत के अधीन होते चले गये। वैश्विक बाजार एवं औपनिवेशिक मॉडल ने लोक समुदायों की स्वायत्ता एवं इनसे जुड़े व्यक्तियों की स्वतंत्रता का हनन किया। नयी जासूसी की तकनीक, स्वतंत्रता के हनन के दायरे में सबको समेटती जा रही है।

-बिमल कुमार

लोकतंत्र के सलीब पर साइबर जासूसी की कील!

❑ श्रवण गर्ग

इज़रायल में निर्मित जासूसी करने के उच्च-तकनीकी और महँगी क़ीमत वाले पेगासस सॉफ्टवेयर या स्पाईवेयर का कई देश आतंकवाद और आपराधिक गतिविधियों पर नियंत्रण के लिए इस्तेमाल कर रहे थे। भारत में भी कुछ सामाजिक और राजनीतिक व्यक्तियों के खिलाफ इसका इस्तेमाल किया जा रहा है।

पूर्व सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) मंत्री और सात जुलाई को हुए मंत्रिमंडलीय फेरबदल में हटाए जाने के पहले तक देश में अत्याधुनिक प्रौद्योगकी के विकास और उसके इस्तेमाल की पताका फहराने वाले रविशंकर प्रसाद ने जो कुछ कहा है, उसने चल रहे विवाद की गम्भीरता को और बढ़ा दिया है। रविशंकर प्रसाद ने बजाय इन आरोपों का खंडन करने के, पलटकर यह पूछ लिया कि जब दुनिया के पैंतालीस देश पेगासस सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल कर रहे हैं तो भारत में इस बात पर इतना बवाल क्यों मचा हुआ है?

रविशंकर प्रसाद के बयान के बाद एक नया डर उत्पन्न हो गया है। वह यह कि किसी दिन कोई अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति खड़े होकर यह बयान भी दे सकता कि अगर दुनिया के 167 देशों के बीच 'पूर्ण' प्रजातंत्र सिर्फ तेईस देशों में ही है और सत्तावन में अधिनायकवादी व्यवस्थाएँ क़ायम हैं तो भारत में इतना बवाल क्यों मचाया जा रहा है? ब्रिटेन के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी अख़बार 'द गार्डियन' का कहना है कि जो दस देश कथित तौर पर जासूसी के कृत्य में शामिल हैं, वहाँ अधिनायकवादी सत्ताएँ क़ाबिज़ हैं।

अपने राजनीतिक विरोधियों अथवा अलग विचारधारा रखने वाले लोगों, पत्रकारों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों आदि की जासूसी पूर्व की सरकारों में मानव जासूसों के द्वारा करवाई जाती रही है। आपातकाल में जिन लगभग डेढ़ लाख लोगों को गिरफ्तार किया गया था, उनमें भी सभी वर्गों के नागरिक शामिल थे। तब मोबाइल फ़ोन भी नहीं थे। मार्च 1991 में प्रधानमंत्री चंद्रशेखर की सरकार को कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस लेकर केवल इस एक कारण से गिरा दिया था कि हरियाणा सीआईडी के दो सादी वर्दीधारी जवान दस जनपथ के बाहर चाय पीते हुए पकड़ लिए गए थे। कांग्रेस ने तब आरोप लगाया था कि इन लोगों को राजीव गांधी की जासूसी करने के लिए तैनात किया गया था।

ताज़ा मामले में तो आरोप यह भी है कि जिन लोगों की जासूसी हो रही थी उनमें अन्य लोगों के अलावा सरकार के ही मंत्री, उनके परिवारजन, घरेलू कर्मचारी और अफ़सर आदि भी शामिल रहे हैं। चंद्रशेखर के जमाने तक अगर नहीं जाना हो और वर्तमान सरकार के जमाने की ही बात करना हो तो सिर्फ अक्टूबर 2018 तक ही पीछे लौटना पड़ेगा।तब सी बी आई के डायरेक्टर आलोक वर्मा के सरकारी बंगले के सामने की सड़क पर इधर-उधर ताक-झांक करते देखे गए चार व्यक्तियों को पकड़ लिया गया था। बाद में पता चला था कि चारों इंटेलिजेन्स ब्यूरो (आईबी) के लोग थे। तब आरोप लगाया गया था कि आलोक वर्मा की जासूसी करवाई जा रही है। गृह मंत्रालय की ओर से उसे रुटीन ड्यूटी बताया गया था।

कोई आदमी जब अपने ही जैसे दूसरे आदमियों की जासूसी करता है तो नागरिकों को ज्यादा डर नहीं लगता। ऐसा इसलिए कि यह आदमी सिर्फ निशाने पर लिए गए शिकार के आवागमन और उसके अन्य लोगों से मिलने-जुलने की जानकारी ही जमा करता है। बातचीत को सुनने के लिए फ़ोन टेपिंग के अलावा घरों में सेंध लगाकर गुप्त उपकरण स्थापित करने पड़ते हैं।

हाल ही में जब राजस्थान की कांग्रेस सरकार में विद्रोह जैसी स्थिति बन गई थी, तब जासूसी के परम्परागत तरीक़े ही विद्रोहियों के खिलाफ़ आज़माए गए थे। पर कर्नाटक में जनता दल (एस) और कांग्रेस के गठबंधन की सरकार को गिराने में पेगासस स्पाईवेयर के इस्तेमाल के आरोप अब उजागर हो रहे हैं।

नागरिक के ज्यादा डरने के कारण तब उत्पन्न हो जाते हैं, जब उसे पता चलता है कि कोई हुकूमत या अज्ञात सत्ता चाहे तो अदृश्य तकनीक की मदद से हज़ारों मील दूर बैठकर भी उसके शयन कक्ष में पहुँचकर उसके अंतरंग क्षणों को उसी के मोबाइल कैमरों के ज़रिए प्राप्त कर सकती है, बातें सुन सकती है, उनकी रिकॉर्डिंग कर सकती है, संदेशों को पढ़ सकती है और अंततः उसकी जिंदगी को क़ैद कर सकती है। नागरिक को तब लगने लगता है कि उसे अब अपने बेडरूम में अंदर से कुंडी लगाना भी बंद कर देना चाहिए। पेगासस जासूसी का मामला अभी दुनिया के पचास हज़ार लोगों तक ही सीमित बताया जा रहा है, पर यह संख्या किसी दिन पाँच लाख या पाँच करोड़ तक भी पहुँच सकती है।

नागरिक जब सरकारों में बैठे हुए व्यक्तियों और उनके चेहरों की बदलती हुई मुद्राओं के बजाय उनके द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले गुप्त और अदृश्य तकनीकी उपकरणों से ख़ौफ़ खाने लगे तो समझा जाना चाहिए कि या तो लोकतंत्र पूरी तरह से समाप्त हो चुका है या फिर आगे-पीछे हो सकता है। ऐसी स्थितियाँ तभी बनती हैं, जब शासकों को लगने लगता है कि उनकी लोकप्रियता घट रही है या काफ़ी लोग उनके खिलाफ़ गुप्त षड्यंत्र कर रहे हैं।

पता किया जाना चाहिए कि पेगासस खुलासे के बाद से कितने लोगों ने अपने मोबाइल बंद कर दिए हैं, शयनकक्षों से दूर रख दिए हैं या उनसे पूरी तरह दूरी बनाकर रहने लगे हैं। ❑

हम जेब में लेकर नहीं घूम सकते हैं अपना दुश्मन

❑ अरुंधति रॉय

भारत में मौतों की मनहूसियत का मौसम बड़ी तेज़ी से जासूसी के मौसम में बदलता हुआ दिखाई दे रहा है। कोरोना वायरस की दूसरी लहर उतर गई है, और अपने पीछे छोड़ गई है अंदाज़न 40 लाख भारतीयों की मौतें। मौतों का आधिकारिक सरकारी आंकड़ा इसका दसवां हिस्सा है– चार लाख। इस खौफनाक हुकूमत में, जब श्मशान घाटों पर धुआं छंटने लगा और कब्रिस्तानों की मिट्टी जमने लगी, तब हमारी सड़कों पर 'थैंक्यू मोदी जी' कहते हुए भारी-भरकम होर्डिंग नमूदार हुए। (यह उस 'मुफ्त वैक्सीन' के लिए लोगों की तरफ से पेशगी शुक्रिया है, जो ज्यादातर तो उपलब्ध नहीं है, और जिसे आबादी के 95% को अभी लगना बाकी है।) जहां तक मोदी सरकार की बात है, मौतों के सही आंकड़ों की गिनती करने की कोई भी कोशिश भारत के खिलाफ एक साजिश है– मानो जो दसियों लाख लोग मरे, वे महज अभिनेता थे, जो एक बदनीयती के साथ काम कर रहे थे, जो उन तंग, सामूहिक कब्रों में लेटे हैं, जिन्हें आपने आसमान से ली गई तस्वीरों में देखा, या जिन्होंने लाशों का भेष धर कर खुद को नदियों में बहाया, या जिन्होंने शहरों के फुटपाथों पर खुद की लाश जलाई। वे सभी भारत की अंतरराष्ट्रीय इज्ज़त को बदनाम करने की अकेली ख्वाहिश के साथ काम कर रहे थे।

भारत सरकार ने इस्राएली निगरानी कंपनी एनएसओ द्वारा विकसित पेगासस स्पाइवेयर (जासूसी करने वाला एक सॉफ्टवेयर) खरीदा है। अपनी तरफ से एनएसओ ने कहा है कि वह अपनी तकनीक सिर्फ उन्हीं सरकारों को बेचती है, जिनका मानवाधिकारों का इतिहास बेदाग हो और जो वादा करती हैं कि वे सिर्फ राष्ट्रीय सुरक्षा के मकसद से, आतंकवादियों और अपराधियों का सुराग लगाने के लिए इसका उपयोग करेंगी।

स्पाइवेयर की भारी-भरकम कीमत के अलावा, जो एक-एक फोन के लिए लाखों डॉलर तक होती है, एनएसओ प्रोग्राम की कुल कीमत का 17% सालाना सिस्टम मेन्टेनेंस फीस के रूप में वसूल करता है। एक विदेशी कॉरपोरेट कंपनी एक ऐसा जासूसी नेटवर्क मुहैया करा रही है और उसे चलाती है, जो एक देश की सरकार की तरफ से उस देश के नागरिकों की निगरानी कर रही है।

जब श्मशान घाटों पर धुआं छंटने लगा और कब्रिस्तानों की मिट्टी जमने लगी, तब हमारी सड़कों पर 'थैंक्यू मोदी जी' कहते हुए भारी-भरकम होर्डिंग नमूदार हुए। (यह उस 'मुफ्त वैक्सीन' के लिए लोगों की तरफ से पेशगी शुक्रिया है, जो ज्यादातर तो उपलब्ध नहीं है, और जिसे आबादी के 95% को अभी लगना बाकी है।) जहां तक मोदी सरकार की बात है, मौतों के सही आंकड़ों की गिनती करने की कोई भी कोशिश भारत के खिलाफ एक साजिश है– मानो जो दसियों लाख लोग मरे, वे महज अभिनेता थे, जो एक बदनीयती के साथ काम कर रहे थे, जो उन तंग, सामूहिक कब्रों में लेटे हैं, जिन्हें आपने आसमान से ली गई तस्वीरों में देखा, या जिन्होंने लाशों का भेष धर कर खुद को नदियों में बहाया, या जिन्होंने शहरों के फुटपाथों पर खुद की लाश जलाई। वे सभी भारत की अंतरराष्ट्रीय इज्ज़त को बदनाम करने की अकेली ख्वाहिश के साथ काम कर रहे थे।

पत्रकारों के जांच दल ने 50,000 फोन नंबरों की एक लीक हुई सूची की छानबीन की। इस विश्लेषण से पता लगा कि इनमें से 1,000 से अधिक नंबर भारत में एनएसओ के एक क्लाइंट द्वारा चुने गए थे। वे इन नंबरों को हैक करने में सफल रहे थे या नहीं, या उनको हैक करने की कोशिश हुई थी या नहीं, यह बात सिर्फ तभी पता लगाई जा सकती है, जब इन फोनों को फोरेंसिक जांच के लिए जमा किया जाए। भारत में जिन नंबरों की जांच की गई, उनमें से कइयों को पेगासस स्पाइवेयर से संक्रमित पाया गया। लीक हुई सूची में विपक्षी दलों के राजनेताओं, आलोचना करने वाले पत्रकारों, कार्यकर्ताओं, वकीलों, बुद्धिजीवियों, कारोबारियों, भारत के चुनाव आयोग के एक नाफरमान अधिकारी, बात नहीं मानने वाले एक वरिष्ठ खुफिया अधिकारी, कैबिनेट मंत्री, उनके परिवार वाले, विदेशी कूटनीतिज्ञ और यहां तक कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान के फोन नंबर भी शामिल हैं।

हमें बताया गया है कि पेगासस को बस एक मिस्ड कॉल के ज़रिए टारगेट किए गए फोन में इंस्टॉल किया जा सकता है। जरा सोचिए। मिस्ड कॉल की एक मिसाइल से दागे गए अदृश्य स्पाइवेयर का गोला बारूद। महाद्वीपों को लांघने वाली एक बैलिस्टिक मिसाइल (आइसीबीएम) जिसका कोई जोड़ नहीं है। जो लोकतंत्रों को तहस-नहस करने में और समाजों को तोड़ने में सक्षम है, जिसको किसी लाल-फीताशाही का सामना नहीं करना है– न वारंट, न हथियारों के समझौते, न चौकसी करने वाली समितियां, न ही किसी किस्म का कानून। बेशक तकनीक का अपना कोई उसूल नहीं होता। इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है।

जाहिर तौर पर एनएसओ और भारत के बीच दोस्ताना लेन-देन 2017 से शुरू हुआ, जब भारतीय मीडिया की भाषा में मोदी-नेतन्याहू का 'ब्रोमान्स' चला था। उसी साल भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद का बजट दस गुना बढ़ गया। ज्यादातर बढ़ी हुई रकम साइबर सिक्योरिटी पर खर्च होनी थी। प्रधानमंत्री के

रूप में अपना दूसरा कार्यकाल जीतने के बाद जल्दी ही, अगस्त 2019 में भारत के कठोर आतंकवाद विरोधी कानून, गैर कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए) का विस्तार करके, जिसके तहत पहले से ही हजारों लोग बिना जमानत के जेलों में बंद हैं, अब सिर्फ संगठनों को ही नहीं, निजी व्यक्तियों को भी इसके दायरे में ले आया गया।

पेगासस कांड ने संसद के मानसून सत्र में उथल-पुथल पैदा की है। विपक्ष ने गृह मंत्री के इस्तीफे की मांग की है। अपने बहुमत से आश्वस्त मोदी की सत्ताधारी पार्टी ने रेलवे और संचार एवं सूचना तकनीक मंत्री के रूप में नए-नए शपथ लेने वाले अश्विनी वैष्णव को संसद में सरकार का बचाव करने के लिए उतारा। उनकी अपमानजनक किस्मत देखिए, लीक हुई सूची में उनका नंबर भी था।

तो हम पेगासस को कैसे समझें? हकीकत से आंखें मूदते हुए इसको खारिज कर दें, कह दें कि शासक अपने शासितों की निगरानी करने के लिए जो सदियों पुराना खेल चलाते आए हैं, यह उसका महज एक नया तकनीकी हथकंडा है? हमारे मोबाइल फोन हमारे सबसे अंतरंग वजूद में शामिल हैं। वे हमारे दिमाग और हमारे शरीरों का विस्तार हैं। भारत में मोबाइल फोन की गैरकानूनी निगरानी नई बात नहीं है। लेकिन सरकारों और कॉरपोरेट कंपनियों को इस बात का कानूनी अधिकार दे देना कि वे हमारे फोन में घुसपैठ करें और उस पर कब्जा कर लें, ऐसा ही होगा मानो हम अपनी मर्यादा का हनन करने के लिए खुद को उनके हाथों में सौंप दें।

पेगासस प्रोजेक्ट से उजागर होने वाली बातें दिखाती हैं कि इस स्पाइवेयर का संभावित खतरा पुरानी किसी भी किस्म की खुफियागीरी या निगरानी से कहीं अधिक आक्रामक है। यह गूगल, अमेजन और फेसबुक से भी अधिक आक्रामक है, जिनके ताने-बाने के भीतर करोड़ों लोग अपनी जिंदगियां जी रहे हैं और अपनी चाहतों से खेल रहे हैं। यह अपनी जेब में एक जासूस लिए फिरने से भी बड़ी बात है। पेगासस जैसे स्पाइवेयर न सिर्फ हरेक संक्रमित फोन के उपयोगकर्ता को, बल्कि उसके दोस्तों, परिवार वालों, सहकर्मियों के पूरे दायरे को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जोखिम में डालता है।

जब पेगासस प्रोजेक्ट की खबरें आने लगीं तो मैं वापस अपनी रेकॉर्डेड बातचीत के ट्रांस्क्रिप्ट पढ़ने लगी। यह कुछ सौ पन्नों में है। अंत में मेरे रोंगटे खड़े हो गए। तब महज अपने तीसवें में रहे सडवर्ड स्नोडेन, जो संयुक्त राज्य अमरीका के नेशनल सिक्युरिटी एजेंसी के पूर्व एनालिस्ट और आलोचक हैं, एक सख्त पैगंबर की तरह बोल रहे थे : 'तकनीक वापस नहीं ली जा सकती है, तकनीक तो बनी रहेगी... यह सस्ती होने वाली है, यह अधिक कारगर होने वाली है, यह और अधिक उपलब्ध होने वाली है। अगर हम कुछ नहीं करते, तो एक तरह से हम सोते-सोते एक मुकम्मल निगरानी वाले राज्य में पहुंच जाएंगे, जहां एक सुपर स्टेट होगा, जिसके पास ताकत का उपयोग करने की अथाह क्षमता होगी और यह एक बहुत खतरनाक मिश्रण है... भविष्य की यह दिशा है।'

दूसरे शब्दों में, हम एक ऐसी दिशा में बढ़ रहे हैं जहां हम पर ऐसे राज्यों का शासन होगा, जो हर वह बात जानते हैं, जो लोगों के बारे में जानी जा सकती है, लेकिन उन राज्यों के बारे में जनता बहुत कम जानती है। यह असंतुलन सिर्फ एक ही दिशा में ले जा सकता है। एक असाध्य जानलेवा हुक्मरानी और लोकतंत्र के अंत की ओर।

हमें एक ऐसी दुनिया में वापस जाना होगा, जहां हम अपने सबसे अंतरंग दुश्मन अपने मोबाइल फोन के कब्जे में, उसके मातहत नहीं जी रहे होंगे। हमें डिजिटल निगरानी की दम घोंट देने वाली हुकूमत के बाहर अपनी जिंदगियों को, संघर्षों को और सामाजिक आंदोलनों को फिर से रचना होगा। हमें उन व्यवस्थाओं को सत्ता से बेदखल करना होगा, जो हमारे खिलाफ इसकी तैनाती कर रही हैं। सत्ता की मूठ पर उनकी गिरफ्त को ढीली करने के लिए, उन्होंने जो कुछ तोड़ा उसे जोड़ने के लिए, और उन्होंने जो कुछ चुरा लिया है उसे वापस लेने के लिए, हम जो भी कर सकते हैं वह हमें करना होगा।

- गार्डियन

अनुवादक : रेयाज़ुल हक़

पत्रकारों के जांच दल ने 50,000 फोन नंबरों की एक लीक हुई सूची की छानबीन की। इस विश्लेषण से पता लगा कि इनमें से 1,000 से अधिक नंबर भारत में एनएसओ के एक क्लाइंट द्वारा चुने गए थे। वे इन नंबरों को हैक करने में सफल रहे थे या नहीं, या उनको हैक करने की कोशिश हुई थी या नहीं, यह बात सिर्फ तभी पता लगाई जा सकती है, जब इन फोनों को फोरेंसिक जांच के लिए जमा किया जाए। भारत में जिन नंबरों की जांच की गई, उनमें से कइयों को पेगासस स्पाइवेयर से संक्रमित पाया गया। लीक हुई सूची में विपक्षी दलों के राजनेताओं, आलोचना करने वाले पत्रकारों, कार्यकर्ताओं, वकीलों, बुद्धिजीवियों, कारोबारियों, भारत के चुनाव आयोग के एक नाफरमान अधिकारी, बात नहीं मानने वाले एक वरिष्ठ खुफिया अधिकारी, कैबिनेट मंत्री, उनके परिवार वाले, विदेशी कूटनीतिज्ञ और यहां तक कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान के फोन नंबर भी शामिल हैं।

आभार!

सर्वोदय जगत के इस अंक का प्रकाशन श्रीमती उषा बहन पंडित, डहेगांव ग्राम स्वराज केन्द्र, वेलपुरा, तालुक-डहेगांव, जिला- गांधीनगर-382315 (गुजरात) के आर्थिक सहयोग से किया गया है।

इस सहयोग हेतु श्रीमती उषा बहन के प्रति सर्व सेवा संघ आभार प्रकट करता है।

सत्य निरपेक्ष होता है! सत्य आत्मनिर्भर होता है!! सत्य ही ईश्वर होता है!!!

❑ मदन मोहन वर्मा / चित्रा वर्मा

व्यक्ति लोगों पर, समाज पर, देश और व्यवस्था पर निर्भर होता है। जैसे दूध के लिए गाय या भैंस का होना आवश्यक है और गाय-भैंस को पालने के लिए चारे की और चारे के लिए बीज, खाद, पानी आदि की जरूरत होती है। कपड़े के लिए मिल, मजदूर, दुकानदार, दर्जी, सुई, धागा और बटन आदि की आवश्यकता होती है। दवा के लिए वैज्ञानिक, डॉक्टर, अस्पताल, दुकान और दवा कंपनी की आवश्यकता होती है। शिक्षा के लिए शिक्षक, विद्यालय, किताब-कॉपी और कलम की आवश्यकता होती है। ठीक वैसे ही व्यक्ति को उसके विकास के लिए समाज की जरूरत होती है। निष्कर्ष यह कि समाज आत्मनिर्भर हो सकता है, देश आत्मनिर्भर हो सकता है, व्यवस्था आत्मनिर्भर हो सकती है, परंतु व्यक्ति आत्मनिर्भर नहीं हो सकता है। व्यक्ति जिस समाज में रहता है, जिस देश में रहता है, जिस व्यवस्था में रहता है, वह वृहद समूह, व्यवस्था (सिस्टम) तो आत्मनिर्भर हो सकता है, पर व्यक्ति, परिवार, एक गांव या एक छोटा समूह आत्मनिर्भर नहीं हो सकता है। समाज और व्यवस्थापरक सोच में व्यक्ति बड़ा नहीं है, समाज बड़ा है। लोक सबसे आगे और व्यक्ति सबसे पीछे, इस परिकल्पना को चरितार्थ करना ही हमारा आदर्श लक्ष्य होना चाहिए।

किसी बड़े से बड़े शहर में किसी व्यक्ति को अकेला छोड़ दें, भले ही उसे वहां का शासक-प्रशासक बना दें तो क्या वह खुश रह सकेगा? शहर का सन्नाटा उसे भयभीत कर देगा। किसी प्रशासक को किसी शहर के लोग सहयोग न करें, तो क्या वह वहां टिक सकेगा? वह उल्टे पैर भाग जायेगा। प्रधानमंत्री बनने के लिए भी लोगों के वोट की जरूरत होती है। ब्रह्मांड का हर हिस्सा एक दूसरे पर निर्भर होता है, कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं होता, जिसे अपने सर्वाइवल के लिए दूसरे हिस्से की जरूरत न हो। बरगद की शाखाएं, पत्ते, जड़, तना आदि मिलजुल कर पेड़ का अस्तित्व बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

डार्विन ने कहा, जीने के लिए संघर्ष करो। हक्सले ने कहा, जियो और जीने दो। गांधी ने कहा, तुम दूसरों के लिए जियो, मैं तुम्हारे लिए जिऊंगा। सर्वोत्कृष्ट यही है कि हम एक दूसरे के जीने में सहयोग करें। व्यक्ति का व्यक्तिगत व पारिवारिक जीवन महत्त्वपूर्ण है, लेकिन समाज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

सुखी रहने के लिए पड़ोसी का अच्छा होना, अपने से ज्यादा अच्छा होना अधिक जरूरी है। खुराफती पड़ोसियों के बीच रहना बहुत कष्टकर है। इसी तरह उपद्रवग्रस्त समाज-व्यवस्था भी अत्यन्त घातक है। उपद्रवग्रस्त समाज में कौन रहना पसंद करेगा? कहीं बसने से पूर्व लोग वहां के माहौल की जानकारी प्राप्त करने के बाद ही नयी जगह बसते हैं। लोग उपद्रवग्रस्त जगह से हटकर भले लोगों के बीच रहना पसंद करते हैं। उदाहरणस्वरूप जम्मू-कश्मीर से नागरिकों का पलायन, युद्धकाल में लोगों का पलायन, देश-विभाजन के समय हिन्दू-मुसलमानों की अदला-बदली।

अपनी जाति के डाकू को दूसरी जाति के संत से बेहतर समझना समाज व देश के लिए खतरनाक है। सभी को अपने समाज के डाकू को डाकू और दूसरे समाज के संत को संत समझना होगा। अलग-अलग जातियों का सत्य अलग-अलग नहीं हो सकता है। सत्य निरपेक्ष है। सत्य को इसीलिए हमारे सिस्टम का आधार होना चाहिए। सत्य आत्मनिर्भर है, सत्य चाहे जिस जाति, धर्म, वर्ग का हो, वह सबको दिखना चाहिए और इसी प्रकार असत्य चाहे जिस जाति, धर्म का हो, वह भी सबको दिखना चाहिए। हमारा दृष्टिकोण मात्र यह होना चाहिए कि सत्य, सत्य है और असत्य, असत्य है।

गांधीजी ने पहले कहा कि ईश्वर ही सत्य है, लेकिन विभिन्न धर्मों के ईश्वर तो भिन्न-भिन्न हैं, इस तरह तो सत्य भिन्न-भिन्न हो जायेगा। यह भी प्रश्न खड़ा हुआ कि बहुत से लोग नास्तिक हैं, फिर उनके सत्य का क्या होगा? इसलिए गांधीजी ने कहा कि 'सत्य ही ईश्वर है'। महापुरुषों की जातिगत समीक्षा अत्यंत दुःखद है। सभी महापुरुष सम्माननीय एवं श्रद्धेय हैं। जैसे बाग में विभिन्न प्रकार के पौधे व वृक्ष मिलकर बाग की संरचना

करते हैं, सबकी अपनी-अपनी उपयोगिता है, जिस प्रकार सभी वृक्ष ऑक्सीजन, फल, लकड़ी आदि देते हैं, इसी प्रकार समाज के सभी महापुरुषों का अपना-अपना महत्त्व है। महापुरुषों की तुलना करना छलावा है। महापुरुष देश व समाज की बगिया के वृक्ष और पुष्प हैं।

जो व्यक्ति जिस महापुरुष के प्रति आदर रखता है, उसी महापुरुष के सकारात्मक गुणों को ग्रहण करके श्रेष्ठ मानव की भूमिका समाज में अदा कर सकता है। मैंने अपने गांव में पटेल बिरादरी के लोगों से पूछा कि क्या आप लोगों की श्रद्धा लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल में है? सभी ने उत्साहपूर्वक स्वीकार किया कि उनकी श्रद्धा पटेल जी में है। मैंने पूछा अगर सरदार पटेल में श्रद्धा है तो उन्होंने कब कहा कि आप लोग नशे का सेवन करें? यदि आप इन चीजों का उपयोग करते हैं तो इसका आशय यह क्यों न लगाया जाये कि आपको सरदार पटेल में कोई श्रद्धा नहीं है? इसी प्रकार अपने गांव की दलित बस्ती में यही प्रश्न किया कि क्या आप लोगों की बाबा साहेब अम्बेडकर में श्रद्धा है? सभी ने स्वीकार किया कि उनकी श्रद्धा बाबा साहेब में प्रबल रूप से है। मैंने प्रश्न किया कि शराब आदि नकारात्मक चीजों का प्रयोग करने के लिए बाबा साहेब ने कब कहा और कहां कहा? इसका आशय आप लोगों की श्रद्धा असली नहीं है। लोग इस बात से चकित हुए। उन्हें लगा कि वाकई कहीं न कहीं, कुछ न कुछ गलत हो रहा है। या तो हमारी श्रद्धा अशुद्ध है या फिर हमारी आदतें गलत हैं।

वास्तव में, इन बातों का असर पड़ने लगा है। धीरे-धीरे ही सही, हमारे गांव का मौसम बदलने लगा है। ❑

मुझे भी कुछ कहना है, मी लार्ड!

❑ कुमार प्रशांत

स्टेन स्वामी की मृत्यु के बाद कुछ भी लिखने-कहने की फूहड़ता से बचने की मैंने बहुत कोशिश की। मुझे लगता रहा कि यह अवसर ऐसा है कि हम आवाज ही नहीं, सांस भी बंद कर लें तो बेहतर! लेकिन घुटन ऐसी है कि वैसा करके भी हम अपने कायर व क्रूर अस्तित्व से बच नहीं पाएंगे तो कुछ बोलना या पूछना जरूरी हो जाता है। और पूछना आपसे है, न्यायमूर्ति महोदय!

मेरे पूछने में थोड़ी तल्खी और बहुत सारी बेबाकी हो तो मैं आशा करता हूं कि आप इसे लोकतंत्र में लोक की अवमानना की अपमानजनक पीड़ा की तरह समझेंगे। यह भी शुरू में ही कह दूं कि यह बहुत पीड़ाजनक है, लेकिन यही सच है। अपनी न्यायपालिका से इधर के वर्षों में कुछ कहने या सुनने की सार्थकता बची ही नहीं थी। गांधी ने हमें सिखाया है कि एक चीज होती है अंतरात्मा और वह जब छुई जा सके, तब छूने की कोशिश करनी चाहिए। मैं वही कोशिश कर रहा हूं।

अहमदाबाद में आयोजित 'जस्टिस पीडी देसाई मेमोरियल ट्रस्ट' के व्याख्यान में सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एनवी रमण ने कुछ ऐसी नायाब बातें कहीं हैं, जिनसे लगा कि कहीं, कोई अंतरात्मा है, जो धड़क रही है। मैं उसी धड़कन के साथ जुड़ने के लिए यह लिख रहा हूं। मी लॉर्ड, 84 साल का एक थरथराता-कांपता बूढ़ा, जो सुन भी नहीं पाता था, कह भी नहीं पाता था, चलने-खाने-पीने में भी जिसकी तकलीफ नंगी आंखों से दिखाई पड़ती थी, वह न्यायपालिका के दरवाजे पर खड़ा होकर इतना ही तो मांग रहा था कि उसे अपने घर में, अपने लोगों के बीच मरने की इजाजत दे दी जाए!

उसने कोई अपराध नहीं किया था, राज्य ने उसे अपराधी माना था। इस आदमी पर राज्य का आरोप था कि यह राज्य का तख्ता पलटने का षड्यंत्र रच रहा है और राज्य-प्रमुख की हत्या की दुरभिसंधि में लगा है। इस आरोप के बारे में हम तो क्या कह सकते हैं, कहना तो आपको था। आपने नहीं कहा। हो सकता है कि न्याय की नई परिभाषा में यह अधिकार भी न्यायपालिका के पास आ गया हो कि न्याय करना कि न करना उसका विशेषाधिकार है।

हमें तो अपनी प्राइमरी स्कूल की किताब में पढ़ाया गया था और हमें उसे कंठस्थ करने को कहा गया था कि न्याय में देरी सबसे बड़ा अन्याय है। इसलिए स्टेन स्वामी के अपराधी होने, न होने की बाबत हम कुछ नहीं कहते, लेकिन जानना यह चाहते हैं कि जीवन की अंतिम सीढ़ी पर कांपते थरथराते एक नागरिक की अंतिम इच्छा का सम्मान करना, क्या न्यायपालिका की मनुष्यता से कोई रिश्ता रखता है? फांसी चढ़ते अपराधी से भी उसकी आखिरी इच्छा पूछना और यथासंभव उसे पूरा करना न्याय के मानवीय सरोकार को बताता है। अगर ऐसा है तो स्टेन स्वामी के मामले में अपराधी न्यायपालिका है। मी लार्ड, आपका तो काम ही अपराध की सजा देना है, तो इसकी क्या सजा देंगे आप अपनी न्यायपालिका को?

आपने अपने व्याख्यान में कहा था कि कुछेक सालों में शासकों को बदलना इस बात की गारंटी नहीं है कि समाज सत्ता के आतंक या जुर्म से मुक्त हो जाएगा। आपकी इस बात से अपनी छोटी समझ में यह बात आई कि सत्ता जुर्म भी करती है और आतंक भी फैलाती है। तो फिर अदालत में बार-बार यह कहते स्टेन स्वामी की बात आपकी न्यायपालिका ने क्यों नहीं सुनी कि वे न तो कभी भीमा-कोरेगांव गए हैं, न कभी उन सामग्रियों को देखा-पढ़ा है कि जिसे रखने-प्रचारित करने का साक्ष्यविहीन, मनमाना आरोप उन पर लगाया जा रहा है? मी लॉर्ड, कोई एक ही बात सही हो सकती है। या तो आपने सत्ता के आतंक व जुर्म की जो बात कही, वह! या आतंक व जुर्म से जो सत्ता चलती है, वह! स्टेन स्वामी तो अपना फैसला सुना कर चले गए, आपका फैसला सुनना बाकी है।

हमें तो अपनी प्राइमरी स्कूल की किताब में पढ़ाया गया था और हमें उसे कंठस्थ करने को कहा गया था कि न्याय में देरी सबसे बड़ा अन्याय है। इसलिए स्टेन स्वामी के अपराधी होने, न होने की बाबत हम कुछ नहीं कहते, लेकिन जानना यह चाहते हैं कि जीवन की अंतिम सीढ़ी पर कांपते थरथराते एक नागरिक की अंतिम इच्छा का सम्मान करना, क्या न्यायपालिका की मनुष्यता से कोई रिश्ता रखता है? फांसी चढ़ते अपराधी से भी उसकी आखिरी इच्छा पूछना और यथासंभव उसे पूरा करना न्याय के मानवीय सरोकार को बताता है। अगर ऐसा है तो स्टेन स्वामी के मामले में अपराधी न्यायपालिका है। मी लार्ड, आपका तो काम ही अपराध की सजा देना है, तो इसकी क्या सजा देंगे आप अपनी न्यायपालिका को?

आपने अपने व्याख्यान में बड़े मार्के की बात कही थी कि आजादी के बाद से हुए 17 आम चुनावों में हम नागरिकों ने अपना संवैधानिक दायित्व खासी कुशलता से निभाया है। फिर आप ही कहते हैं कि अब बारी उनकी है, जो राज्य के अलग-अलग अवयवों का संचालन-नियमन करते हैं कि वे बताएं कि उन्होंने अपना संवैधानिक दायित्व कितना पूरा किया। मैं तो आपसे पूछता हूं कि न्यायपालिका ने अपनी भूमिका का कितना व कैसा पालन किया? न्यायपालिका नाम का यह हाथी हमने तो इसी उम्मीद में बनाया और पाला है कि यह हमारे लोकतांत्रिक अधिकारों की पहरेदारी करेगा।

आपकी न्यायपालिका इस अपराध की सजा इन एजेंसियों और इनके आकाओं को क्यों नहीं देती? नागरिकों के प्रति यह संवैधानिक जिम्मेवारी न्यायपालिका की है या नहीं? दिल्ली उच्च न्यायालय ने अभी-अभी कहा है कि सरकार अदालत में झूठ बोलती है। अदालत में खड़े होकर सरकार झूठ बोले तो यह दो संवैधानिक व्यवस्थाओं का एक साथ अपमान है, उसके साथ धोखाधड़ी है। इसकी सजा क्या है? बस इतना कि कह देना कि आप झूठ बोलते हैं? फिर झूठी गवाही, झूठा मुकदमा सबकी छूट होनी चाहिए न? ऐसी आपाधापी ही यदि लोकतंत्र की किस्मत में बदी है तो फिर संविधान का और संविधान द्वारा बनाई इन व्यवस्थाओं का बोझ हम क्यों, कैसे ढोएं?

हमने तो आपका काम एकदम आसान बनाने के लिए यहां तक किया कि एक किताब लिखकर आपके हाथ में धर दी कि यह संविधान है, जिसका पालन करना और करवाना आपका काम है। तो फिर नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों पर पाबंदियां डालने वाले इतने सारे कानून बनते कैसे गए? हमारा संविधान कहता है कि संसद कानून बनाने वाली एकमात्र संस्था है, लेकिन वही संविधान यह भी कहता है कि कोई भी कानून संविधान-सम्मत है या नहीं, यह तय करने वाली एकमात्र संस्था न्यायपालिका है।

आतंक व जुर्म की ताकत से राज करने वाले कानून संसद बना सकती है, लेकिन उसे न्यायपालिका असंवैधानिक घोषित कर निरस्त कर सकती है। फिर 'ऊपा' (यूएपीए) जैसे कानून कैसे बन गए और न्यायपालिका ने उसे पचा भी लिया, जो इसी अवधारणा बना है कि इसे न्यायपालिका न जांच सकती है, न निरस्त कर सकती है? जो न्यायपालिका को अपना संवैधानिक दायित्व पूरा करने में असमर्थ बना दे, ऐसा कानून संविधान सम्मत कैसे हो सकता है? भीमा-कोरेगांव मामले में जिन्हें पकड़ा गया है, उन सब पर मुकदमा चले और उन्हें कानून-सम्मत सजा हो, इस पर किसी को ऐतराज कैसे हो सकता है? लेकिन बिना मुकदमे के उनको जेलों में रखा जाए और हमारी न्यायपालिका वर्षों चुप रहे, यह किस तर्क से समझा जाए?

हजारों-हजार लोग ऐसे हैं, जो जेलों की सलाखों में बिना अपराध व मुकदमे के बंद रखे गए हैं। जेलें अपराधियों के लिए बनाई गई थीं, न कि राजनीतिक विरोधियों व असहमत लोगों का गला घोंटने के लिए। जेलों का गलत इस्तेमाल न हो, यह देखना भी न्यायपालिका का ही काम है। जिस देश की जेलों में जितने ज्यादा लोग बंद होंगे, वह सरकार व न्यायपालिका उतनी ही विफल मानी जाएगी। सरकारी एजेंसियां लंबे समय तक लोगों को जेल में सड़ाकर रखती हैं, जिंदा लाश बना देती हैं और फिर अदालत कहती है कि कोई भी पक्का सबूत पेश नहीं किया गया इसलिए इन्हें रिहा किया जाता है। यह अपराध किसका है?

आपकी न्यायपालिका इस अपराध की सजा इन एजेंसियों और इनके आकाओं को क्यों नहीं देती? नागरिकों के प्रति यह संवैधानिक जिम्मेवारी न्यायपालिका की है या नहीं? दिल्ली उच्च न्यायालय ने अभी-अभी कहा है कि सरकार अदालत में झूठ बोलती है। अदालत में खड़े होकर सरकार झूठ बोले तो यह दो संवैधानिक व्यवस्थाओं का एक साथ अपमान है, उसके साथ धोखाधड़ी है। इसकी सजा क्या है? बस इतना कि कह देना कि आप झूठ बोलते हैं? फिर झूठी गवाही, झूठा मुकदमा सबकी छूट होनी चाहिए न? ऐसी आपाधापी ही यदि लोकतंत्र की किस्मत में बदी है तो फिर संविधान का और संविधान द्वारा बनाई इन व्यवस्थाओं का बोझ हम क्यों, कैसे ढोएं?

आपने उस व्याख्यान में बहुत खूब कहा कि कानून जनता के लिए हैं, इसलिए वे सरल होने चाहिए और उनमें किसी तरह की गोपनीयता नहीं होनी चाहिए। मी लॉर्ड, यह हम कहें तो आपसे कहेंगे, पर आप कहते हैं तो किससे कहते हैं? आपको ही तो यह करना है कि संविधान की आत्मा को कुचलने वाला कोई भी कानून प्रभावी न हो। गांधी ने ऐसा सवाल कितनी ही बार, कितनी ही अदालतों में पूछा था, लेकिन तब हम गुलामों को जवाब कौन देता? लेकिन अब? अब तो एक ही सवाल है कि जो न्यायपालिका सरकार की कृपादृष्टि के लिए तरसती हो, वह न्यायपालिका रह जाती है क्या? सवाल तो और भी हैं, जवाब आपकी तरफ से आना है। ❑

सर्वोदय जगत का अक्टूबर विशेषांक

2 अक्टूबर को बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी का जन्मदिन है। इस अवसर पर सर्वोदय जगत का विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। वरिष्ठ पत्रकार रामदत्त त्रिपाठी इस अंक के अतिथि संपादक होंगे। बैरिस्टर गांधी को हम महात्मा गांधी के नाम से आदर देते हैं। महात्मा गांधी समूची दुनिया में जाने जाते हैं, शायद सबसे अधिक। उनका कौन-सा रूप आपको अच्छा लगता है—आज्ञाकारी पुत्र, एक जागरूक नागरिक, जुझारू और क्रांतिकारी राजनीतिक नेता, आध्यात्मिक गुरु, मैनेजर, बैरिस्टर, लेखक, पत्रकार, संपादक, प्रकृति-पर्यावरण संरक्षक, शाकाहार के प्रचारक, कुदरती उपचार, मरीज़ों की सेवा, आश्रम निर्माता-इंजीनियर, उद्यमी, चरखा, खादी, अख़बार, प्रिंटिंग प्रेस, पति, पिता या कोई और?

अपनी टिप्पणी तीन सौ से एक हजार शब्दों में लिखें और अपनी सामग्री ई-मेल आईडी sarvodayajagat.editorial@gmail.com पर भेजें। साथ में अपना ईमेल पता और WhatsApp नंबर भी देने का कष्ट करें। **-सं.**

असम-मिजोरम सीमा विवाद

राष्ट्रवाद के भीतर पनपता राज्यवाद

❑ अखौरी अवतंस चित्रांश

असम और मिजोरम के बीच शुरू हुए सीमा विवाद में आर्थिक नाकेबंदी की ख़बर चौंकाने वाली है। आजादी के पचहत्तरवें साल में दो राज्य सीमा विवाद में ऐसे पेश आएंगे, इसका जरा भी अंदाजा नहीं था। भारत में दो राज्यों के बीच सीमा विवाद, जल विवाद कोई नयी बात नहीं है। खुद असम का ही विवाद उसके साथ लगे सभी राज्यों से हैं, तो क्या वे सभी राज्य असम से लगती अपनी सीमाओं को सील कर देंगे? या असम, मिजोरम से लगती अपनी सीमा की नाकेबंदी कर देगा? क्या ये राष्ट्रवाद के भीतर पनपते राज्यवाद की कोई नयी परिघटना है?

महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच पांच दशक से ज्यादा समय से सीमा विवाद है। कुछ महीने पहले महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री उद्धव ठाकरे ने विवादित क्षेत्र को 'पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर' की तर्ज पर 'कर्नाटक अधिकृत महाराष्ट्र' तक कह दिया था। दोनों राज्यों के बीच में उत्तरी कर्नाटक की सीमा को लेकर विवाद है। 1956 में भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के दौरान महाराष्ट्र के कुछ नेताओं ने मराठीभाषी बेलगावी सिटी (अब बेलगाम, खानापुर, निप्पानी, नांदगाड और कारवार) को महाराष्ट्र का हिस्सा बनाने की मांग की थी। ये सभी जिले कर्नाटक में हैं। तब कर्नाटक का नाम मैसूर था, जहां की भाषा कन्नड़ थी। ये विवाद काफी लंबा है लेकिन वहां से हिंसा की ख़बरें कभी नहीं मिलती हैं।

इधर पंजाब और हरियाणा में सतलुज–यमुना लिंक नहर को लेकर अरसे से विवाद है। कैप्टन अमरिंदर सिंह कहते हैं कि इस नहर को बनाने की कोशिश की तो पंजाब जल उठेगा। उनका तर्क है कि क्षेत्रीय असुंतलन का फायदा पाकिस्तान उठा सकता है। कैप्टन साहब ने ऐसा क्यों कहा वही जानें, लेकिन सवाल उठता है कि क्या मिजोरम और असम सीमा विवाद से चीन को फायदा नहीं होगा? यदि होगा तो इसका उपाय क्या किया जा रहा है?

2001 में जो तीन नये राज्य बने वे पूर्व की तरह भाषा के आधार पर नहीं बने थे (बिहार से झारखंड, उत्तर प्रदेश से उत्तराखंड और मध्य प्रदेश से छत्तीसगढ़) लेकिन इन छह राज्यों से भी कभी सीमा विवाद की ख़बर नहीं आयी। तो क्या मान लें कि भाषा के आधार पर बने राज्यों में सीमा विवाद खत्म नहीं हो सकता? या संस्कृति के आधार पर खींची सीमाओं पर विवाद खत्म होना मुश्किल है, जैसा पूरी दुनिया में है?

थोड़ा पीछे चलते हैं। 15 अगस्त 1947 से पहले देश में 17 प्रांत थे, जो ब्रिटिश राज के अधीन थे और 584 रियासतें थीं। अब आप दिल-दिमाग पर जोर देकर सोचिए कि 1947 से पहले झगड़ा क्या था? अंग्रेजों से आजादी ही चाहिए थी न? आजादी के बाद रियासतों में से कुछ का पाकिस्तान में विलय हुआ तो कुछ को भारत में मिला लिया गया। दूसरी ओर आधुनिक परिभाषा के तहत जो ब्रिटिशकालीन प्रांत थे, वे महज बीस साल के भीतर भाषा और संस्कृति के आधार पर बंट गए। यह काम राज्य पुनर्गठन आयोग के तहत किया गया। इस बंटवारे ने क्षेत्रीय और भाषाई पहचानों को संतुष्ट करने के लिए मोटे तौर पर अखिल भारतीय संस्कृति और भारतीय पहचान को नुकसान पहुंचाया।

आज जिस उत्तर प्रदेश के निवासी पश्चिम और पूर्वांचल के बीच सांस्कृतिक अंतर की बात करते हैं, उन्हें पता होना चाहिए कि दिल्ली भी इसी प्रांत का हिस्सा था। तब सभी भारत के नागरिक थे और आजादी की ललकार साथ लगाते थे, लेकिन आज सत्तर साल बाद एक-दूसरे से श्रेष्ठता के भाव में सब मदहोश रहते हैं। आजादी के बाद राजपुताना इलाके की रियासतों का एकीकरण हुआ। सबसे पहले कोटा और मेवाड़ भारत संघ में शामिल हुए। कई वर्षों तक कोटा राजपुताने की राजधानी रही। फिर उदयपुर राज्य भी शामिल हो गया और उसके बाद जयपुर ने भी भारत संघ में विलय स्वीकार कर लिया, जिसके बाद राजस्थान राज्य अस्तित्व में आया, जिसकी राजधानी जयपुर बना। दक्षिण-पूर्व राजपूताना के कुछ क्षेत्र मध्य प्रदेश और दक्षिण-पश्चिम के और कुछ क्षेत्र अब गुजरात का

महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच पांच दशक से ज्यादा समय से सीमा विवाद है। कुछ महीने पहले महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री उद्धव ठाकरे ने विवादित क्षेत्र को 'पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर' की तर्ज पर 'कर्नाटक अधिकृत महाराष्ट्र' तक कह दिया था। दोनों राज्यों के बीच में उत्तरी कर्नाटक की सीमा को लेकर विवाद है। 1956 में भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के दौरान महाराष्ट्र के कुछ नेताओं ने मराठीभाषी बेलगावी सिटी (अब बेलगाम, खानापुर, निप्पानी, नांदगाड और कारवार) को महाराष्ट्र का हिस्सा बनाने की मांग की थी। ये सभी जिले कर्नाटक में हैं। तब कर्नाटक का नाम मैसूर था, जहां की भाषा कन्नड़ थी। ये विवाद काफी लंबा है लेकिन वहां से हिंसा की ख़बरें कभी नहीं मिलती हैं।

हिस्सा हैं। इधर आजादी के बहुत बाद पंजाब से अलग होकर हिमाचल प्रदेश बना, फिर हरियाणा बना। 1960 में महाराष्ट्र और गुजरात बांबे प्रेसिडेंसी टूटकर दो राज्य बने। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि 1947 से पहले का राष्ट्रवाद आज धीरे-धीरे राज्यवाद में बदलता जा रहा है।

आज जिस उत्तर प्रदेश के निवासी पश्चिम और पूर्वांचल के बीच सांस्कृतिक अंतर की बात करते हैं, उन्हें पता होना चाहिए कि दिल्ली भी इसी प्रांत का हिस्सा था। तब सभी भारत के नागरिक थे और आजादी की ललकार साथ लगाते थे, लेकिन आज सत्तर साल बाद एक-दूसरे से श्रेष्ठता के भाव में सब मदहोश रहते हैं। आजादी के बाद राजपुताना इलाके की रियासतों का एकीकरण हुआ। सबसे पहले कोटा और मेवाड़ भारत संघ में शामिल हुए। कई वर्षों तक कोटा राजपुताने की राजधानी रही। फिर उदयपुर राज्य भी शामिल हो गया और उसके बाद जयपुर ने भी भारत संघ में विलय स्वीकार कर लिया, जिसके बाद राजस्थान राज्य अस्तित्व में आया, जिसकी राजधानी जयपुर बना। दक्षिण-पूर्व राजपूताना के कुछ क्षेत्र मध्य प्रदेश और दक्षिण-पश्चिम के और कुछ क्षेत्र अब गुजरात का हिस्सा हैं। इधर आजादी के बहुत बाद पंजाब से अलग होकर हिमाचल प्रदेश बना, फिर हरियाणा बना। 1960 में महाराष्ट्र और गुजरात बांबे प्रेसिडेंसी टूटकर दो राज्य बने। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि 1947 से पहले का राष्ट्रवाद आज धीरे-धीरे राज्यवाद में बदलता जा रहा है।

लॉर्ड कर्जन ने 1905 में जब बंगाल का विभाजन किया, तब बंगाल में काफी विरोध हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर का लिखा 'आमार सोनार बांग्ला' विरोध का गीत बन गया, जिसके फलस्वरुप 1911 में बंगाल का फिर से एकीकरण हुआ। विदेशी शासकों के लिए ये फैसला वापस लेना, प्रशासनिक दृष्टि से कितना अपमानजनक रहा होगा, इसकी तुलना आप वर्तमान सरकार के किसी निर्णय से कर सकते हैं। खैर, अंग्रेजों ने बंगाली राष्ट्रीयता का ताप ठीक से महसूस किया और प्रशासनिक दृष्टि से ताबड़तोड़ फैसले लिए। सबसे पहले उन्होंने राजधानी कलकत्ता से उठाकर दिल्ली को बना दिया। दूसरा बंगाल को हिन्दी, उड़िया और असमिया भाषा के आधार पर बांट दिया, ताकी आठ करोड़ (तब की) की आबादी के संघर्ष को दबाया जा सके। दिसंबर 1911 में दिल्ली राजधानी बनी और 1912 में जन्म हुआ हिन्दी भाषी बिहार का, असमिया बोलने वालों के लिए असम का और उड़िया बोलने वालों के लिए उड़ीसा का।

साफ है कि जिन राज्यों के बीच सीमा विवाद या जल विवाद है, उनका अस्तित्व ही ज्यादा से ज्यादा पचास वर्षों का है। ऐसे में अगले पचास वर्षों में राज्यवाद कौन-सा आकार लेगा, ये कहना मुश्किल है, लेकिन इतिहास बता रहा है कि हमारे समाज को अपने अतीत में कोई दिलचस्पी नहीं है या फिर हमने इतिहास लेखन में भारी गलती कर दी है, जो लोगों को प्रेरणा देना तो दूर, समझ ही में नहीं आ रहा है। मसलन, चंद्रशेखर आजाद यूपी के थे या मध्य प्रदेश के, ऐसा लिखने की क्या जरूरत है? जब चंद्रशेखर आजाद देश पर मर मिटे, तब न मध्य प्रदेश था, न उत्तर प्रदेश। इसी तरह नील के किसानों ने अंग्रेजों के खिलाफ जो आंदोलन किया, उसे 'बिहार के चंपारण' में लिखने की क्या जरूरत है, जब 1912 तक बिहार राज्य था ही नहीं!

खैर, बंगाल राज्य से अलग हुए असम राज्य के लुशाई हिल्स यानी वर्तमान के मिजोरम राज्य में सीमा विवाद में दो राज्यों की पुलिस का आपस में लड़ना दुखद है। उतना ही दुखद है, जितना तब, जब बंगाल राज्य से अलग होकर बने बिहार राज्य के पुलिस के मुखिया बांबे से बंबई और बंबई से मुंबई बनी महाराष्ट्र की राजधानी की पुलिस पर इमोशनल आरोप लगाते हैं।

चलिए, 1947 से और पीछे चलते हैं। 1856 में आखिरी स्वायत्त रियासत अवध को भी अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कंपनी में मिला लिया, जिसके बाद तत्कालीन नवाब वाजिद अली शाह को कलकत्ता निर्वासित कर दिया गया था। वाजिद अली योद्धा नहीं थे, लेकिन जनप्रिय थे इसलिए उनके निर्वासन से अवध का माहौल भावनात्मक हो गया था। दिल्ली का मुगलिया शासन कमजोर पड़ चुका था और बहादुर शाह जफर अंग्रेजों के पेंशनर हो गए थे। यही हाल मराठों का था। पेशवा बाजीराव बनारस में निर्वासित रह रहे थे और शानो-शौकत के लिए पेंशन पा रहे थे। मैसूर और दक्कन तो सबसे पहले अंग्रेजों का शिकार हुए थे।

1857 से पहले तक राजपुताना के जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर और उदयपुर, राज्य के तौर पर जाने जाते थे, जिनका दिल्ली के मुगल साम्राज्य से तालमेल था। मुगल उनके खिलाफ कुछ नहीं करते थे, जिसके एवज में लड़ाई में राजपूत, दक्कन और मराठाओं के खिलाफ मुगलों का साथ देते थे। राजपूत, महाराणा प्रताप के बाद से मुगलों के साथ सामंजस्य बिठाकर अपनी रियासत बनाए रखे थे। अंग्रेजों ने भी वही नीति अपनायी। इसलिए अंग्रेजों को राजपूताने से कोई दिक्कत नहीं आयी थी। इस तरह 1857 से पहले भारत के नक्शे पर मराठों और मुगलों का साम्राज्य ही दिखता है और आखिरी में अवध का। इसके बाद इतिहासकार आधुनिक भारत का नक्शा खींचते हैं और 160 बरस बाद हम राज्यों की सीमाओं में बंटकर अति-आधुनिक विचार रखने लगे हैं।

हमें 1912, 1947 और 1972 में खींची गयी लकीरों के प्रशासनिक आधार पर सोचना होगा। हमारी पीढ़ियों को भारत का इतिहास पढ़ाने के बजाय भाषा और संस्कृति का विभाजन पढ़ाया गया, उसी का परिणाम असम-मिजोरम के सीमा विवाद के रूप में दिख रहा है।

-जनपथ

रिपोर्ट

सर्व सेवा संघ कार्यसमिति की बैठक सम्पन्न

सेवाग्राम (वर्धा) में सर्व सेवा संघ कार्यसमिति की बैठक 27 जुलाई 2021 को सम्पन्न हुई। बैठक में आजादी के 75 साल पूरे होने पर अमृत महोत्सव मनाने के लिए लंबी चर्चा हुई। 15 अगस्त 2021 से लेकर 15 अगस्त 2022 तक पूरे साल देश में विभिन्न कार्यक्रम करने हेतु कार्यसमिति के सदस्यों द्वारा महत्त्वपूर्ण सुझाव आये।

सर्व सेवा संघ के पूर्व अध्यक्ष एवं नई तालीम के वर्तमान अध्यक्ष डॉ. सुगन बरंठ ने कहा कि गांधी को जमीन पर उतारना हमारा फर्ज है। स्वदेशी आंदोलन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि खादी और ग्रामोद्योगों को पुनर्जीवित करने और पारंपरिक बीजों की रक्षा करने आदि के कार्यक्रमों को चलाना पड़ेगा और जो लोग पहले से इन कार्यों में जुटे हुए हैं, उन्हें इकट्ठा करना चाहिए।

प्रो. सोमनाथ रोड़े (महाराष्ट्र) ने कहा कि स्कूलों-कॉलेजों में कार्यक्रमों के द्वारा गांधी की विचारधारा पर जन प्रबोधन करना चाहिए। जनाधारित पदयात्राओं का आयोजन हो, जिसके द्वारा गांवों में पानी का व्यवस्थापन, महिला सशक्तीकरण, ग्रामसभा का महत्त्व, युवाशक्ति का संगठन, जैविक खेती, ग्राम सफाई, जन आरोग्य आदि विषयों पर लोगों का शिक्षण किया जाय। आजादी के 75 साल के उपलक्ष्य में हर जिले से पूरे साल या दो सालों में 75 अलग-अलग कार्यक्रम हों। देश भर रचनात्मक कार्यों में जुटे हुए कुछ कार्यकर्ताओं को इकट्ठा करके, आज के सिलसिले में हमारे सामने कौन-सी चुनौतियां हैं, इसका परामर्श करें और उस पर ठोस कार्यक्रम बनाकर कार्य हों।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन और वाराणसी परिसर के संयोजक अरविन्द अंजुम ने बताया कि इस अवसर पर हम अपना मूल्यांकन करें। औपचारिक कार्यक्रमों के बजाय कुछ ठोस कार्यक्रम लेने चाहिए। आज हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती 'यूनिव्हर्सल वैलूज' की है। स्वतंत्रता और संविधान में वर्णित मूल्यों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। वृक्षदान, रक्तदान, देहदान और अंतिम जन की सेवा जैसे कार्यक्रमों को चलाने का संकल्प करना जरूरी है।

राजस्थान सर्वोदय मंडल की आशा बहन बोथरा ने कहा कि हमें साबरमती आश्रम को बचाने का संकल्प लेना चाहिए और इस हेतु एक पदयात्रा सेवाग्राम से साबरमती तक करनी चाहिए। वहां 2 अक्टूबर को पहुंचकर अनिश्चितकालीन सत्याग्रह करना चाहिए।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी के पूर्व संयोजक रामधीरज ने कहा कि दिल्ली में चल रहे किसान आंदोलन का पूरी ताकत से समर्थन करना चाहिए और हर राज्य से लोगों को पहुंचना चाहिए। ग्रामदानी और भूदानी गांवों में फिर से ग्राम स्वराज्य के कार्यक्रम शुरू करना चाहिए। तभी हम गांव की लूट (वैश्वीकरण) और बढ़ रही नशाखोरी को रोक सकते हैं। सभी रचनात्मक व खादी संस्थाओं को जोड़कर खादी और ग्रामोद्योग को बचाने का आंदोलन चलाना चाहिए। खादी और ग्राम स्वराज्य गांधीजी का मौलिक कार्यक्रम है। अभियान चलाकर भूदान की जमीनों को इस अमृत महोत्सव वर्ष में बांट देना चाहिए। वर्तमान विवाद को संवाद चलाकर आपसी विचार-विमर्श से हल करना जरूरी है। अदालतों में अनावश्यक समय जायेगा। एक साल नहीं, पांच साल का कार्यक्रम बनायें।

विश्वजीत घोराई (पश्चिम बंगाल) ने बताया कि हमें नये तरुणों के बीच जाना चाहिए। तभी गांधीजी का विचार आगे बढ़ेगा। तरुणों के जीवन (रोजगार) को बचाने का कार्यक्रम सभी गांधीवादी संगठनों को जोड़कर करना चाहिए। हरियाणा के सुखपाल सिंह ने कहा कि हरियाणा में नशाखोरी प्रमुख समस्या है। हम अपने 75 गांवों में नशामुक्ति और शराबबंदी का कार्यक्रम चलायेंगे।

अविनाश काकड़े (वर्धा) ने कहा कि हमें गांधी विचार के लोगों और संस्थाओं को जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। नई पीढ़ी के युवाओं को जोड़कर उन्हें रचनात्मक कार्यक्रम में लगाना चाहिए। साथ ही गांधी विचार को फैलाने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफार्म का इस्तेमाल करना चाहिए।

संतोष भाई (मध्य प्रदेश) ने कहा कि हमें राजकीय आजादी मिली, लेकिन सामाजिक-आर्थिक आजादी नहीं मिली। जल-जंगल-जमीन की समस्याएं हैं। गांधीजी का आर्थिक समता का सपना पूरा नहीं हुआ। सामाजिक न्याय की लड़ाई को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। समाज में अलगाव की भावना बढ़ रही है। 'गाय की हत्या पाप और दलित की हत्या माफ' ऐसा वसूल बन गया है। धर्मनिरपेक्ष भारत की कल्पना खो गयी है। विद्यार्थियों, महिलाओं और अन्य वर्गों को सर्व सेवा संघ में जगह देनी चाहिए। आजादी के इस विशेष वर्ष में मध्य प्रदेश में हम 75 कार्यकर्ता बनायेंगे। रवीन्द्र सिंह चौहान (उत्तर प्रदेश) ने कहा कि भूदान की जमीन भूमिहीनों को बांट दें। ग्रामस्वराज्य के विचारों का फैलाव होना चाहिए। पंचायत को सक्षम करना चाहिए। गांव में पंचायत का निर्णय अंतिम हो।

बजरंग सोनवणे (महाराष्ट्र) ने कहा कि हम मुम्बई के कामगारों को सरकार के खिलाफ आवाज बुलंद करने के लिए संगठन में जोड़ रहे हैं। परिवर्तन लाने के लिए शांतिमय संघर्ष की एक रास्ता है। गांधीवादी कार्यकर्ताओं की

अपनी एक ताकत बननी चाहिए। स्कूल, कॉलेज और बस्ती में जाकर संवाद करना आवश्यक है। धर्मनिरपेक्षता और सर्वधर्म समभाव को जगाने का प्रयास हो। खमनलाल शांडिल्य (छत्तीसगढ़) ने बताया कि सर्वोदय महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा और लोकनायक जयप्रकाश नारायण के विचारों पर आधारित है। इसे लेकर हमें आगे बढ़ना चाहिए। गांव और किसान को जगाना चाहिए। अजमत भाई (ओडिशा) ने कहा कि आजादी के 75 साल मनाने में ज्यादा से ज्यादा युवा सम्मिलित हों। युवा सम्मेलन और पदयात्राओं का आयोजन हो। अध्ययन शिविर चलाये जायें।

डॉ. विश्वजीत (ओडिशा) ने कहा कि हम ग्रामस्वराज्य की संकल्पना 75 गांवों में साकार करेंगे। युवा और आदिवासी लोगों के बीच जायेंगे। युवाओं को जोड़कर इलेक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा गांधीजी के बारे में फैलायी जा रही गलतफहमियों को दूर करेंगे। अरविन्द कुशवाहा (उत्तर प्रदेश) ने कहा कि आजादी की 75वीं जयंती के अवसर पर हमें इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया का बड़े पैमाने पर उपयोग करना चाहिए। युवा शिविरों का जगह-जगह आयोजन हो। गांवों तक और युवाओं तक पहुंचने का ठोस कार्यक्रम बनाना चाहिए। गांधीवादी साथियों और संस्थाओं को, जो आपसी व्यवहार व मतभेद के कारण भटक गये हैं, उन्हें जोड़ने का प्रयास हो। गांवों के लोगों का आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए खेती और फूड प्रोसेसिंग जैसे कामों को बढ़ावा देना चाहिए।

एडवोकेट तुषार भाई (ओडिशा) ने बताया कि ओडिशा में गांधीजी चार बार आये थे। उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव बनाने में भारी योगदान दिया था। इसलिए हम आजादी के 75 साल के उपलक्ष्य में सांप्रदायिक सद्भाव के ज्यादा से ज्यादा कार्यक्रम करेंगे। मगन संग्रहालय (वर्धा) की संचालिका विभा गुप्ता ने कहा कि छोटे किसानों के पास कोई साधन नहीं है। देश में 80 प्रतिशत लोग गरीब हैं, उनके पास कोई साधन-सामग्री नहीं है। वे अत्यंत गरीबी का जीवन जीते हैं। गांधी के चरखे की संख्या घट रही है। स्थानीय कारीगरों की संख्या घट रही है। खादी संस्थाओं के साथ मिलकर खादी को बढ़ाने का कार्यक्रम लेना चाहिए। खादी गांधी के हृदय का काम है। पानी की समस्या गंभीर है, हमें पानी बचाने के लिए प्रयास करना पड़ेगा।

गांधी सम्मान पुरस्कार के संबंध में सूचना

सर्व सेवा संघ द्वारा गांधी-विचार एवं रचना के क्षेत्र में अप्रतिम योगदान करने वाले व्यक्ति को प्रतिवर्ष 'गांधी सम्मान पुरस्कार' से सम्मानित करने का निर्णय लिया गया है। इस वर्ष के पुरस्कार की घोषणा 2 अक्टूबर को 'गांधी जयंती' के दिन की जायेगी। इस पुरस्कार हेतु गांधी-विचार एवं रचना के क्षेत्र में कार्यरत किसी भी योग्य व प्रामाणिक व्यक्ति की अनुशंसा किये जाने की हम आपसे अपेक्षा करते हैं। अनुशंसित व्यक्ति और पुरस्कार के संबंध में कृपया अधोलिखित बिन्दुओं का ख्याल रखें—

* यह पुरस्कार किसी व्यक्ति को ही दिया जायेगा, किसी संस्था को नहीं।
* पुरस्कार हेतु नामांकन आपकी अनुशंसा के आधार पर किया जायेगा।
* पुरस्कार किसी भी भारतीय नागरिक को दिया जा सकेगा।
* अनुशंसित व्यक्ति की न्यूनतम आयु 35 वर्ष या उससे अधिक होनी चाहिए।
* सर्व सेवा संघ के पदाधिकारियों, उनके रिश्तेदारों तथा परिजनों की अनुशंसा नहीं की जा सकेगी।
* लोकसेवक, सर्वोदय मित्र या अन्य ऐसे व्यक्ति, जो सर्व सेवा संघ से संबंधित हैं, इस पुरस्कार के लिए उनके नाम की अनुशंसा नहीं की जायेगी।
* जिस व्यक्ति के नाम की अनुशंसा की जायेगी, उनके जीवन और कार्यवृत्त का समुचित विवरण साथ में संलग्न होना चाहिए।
* अनुशंसित व्यक्ति का कार्यानुभव न्यूनतम 15 वर्ष या उससे अधिक का होना आवश्यक है।
* अनुशंसा पत्र में व्यक्ति का नाम, माता-पिता का नाम, पता, मोबाइल नंबर, ई-मेल, जन्मतिथि, शैक्षणिक योग्यता, कार्यानुभव, कार्य की प्रकृति आदि सूचनाएं शामिल होनी चाहिए। अन्य कोई सूचना, यदि हो तो वह भी शामिल की जानी चाहिए।
* अनुशंसित व्यक्ति यदि पहले किसी पुरस्कार से सम्मानित हो चुका हो, तो उसका विवरण दिया जाना चाहिए।

अपना अनुशंसा पत्र सर्व सेवा संघ, प्रधान कार्यालय, महादेवभाई भवन, सेवाग्राम-442102, जिला-वर्धा (महाराष्ट्र) के पते पर या ई-मेल आईडी sarvasevasangha@hotmail.com पर भेजें।

-अशोक कुमार शरण
प्रबंधक ट्रस्टी, सर्व सेवा संघ
महादेव भाई भवन, सेवाग्राम, वर्धा (महा.)

गांधी विचारक डॉ. जीवीएस प्रसाद (तेलंगाना) ने कहा कि अफ्रीका से वापस लौटने के बाद महात्मा गांधी ने देश में तीन आंदोलन चलाये - 1. असहकार आंदोलन, 2. सविनय कायदेभंग आंदोलन, 3. भारत छोड़ो आंदोलन। आज की स्थिति में गांधीवादी विचारों को जिन्दा रखने के लिए हमें शिक्षा, खेती और ग्राम स्वावलंबन के लिए पूरी ताकत के साथ काम करना जरूरी है। 'महात्मा गांधी मजबूरी का नाम नहीं, मजबूती का नाम है।' गांधी स्मारक निधि (नई दिल्ली) के सचिव संजय भाई ने कहा कि आज की स्थिति में महिलाओं की उचित भागीदारी नहीं है। धर्म और पवित्रता के कारण कुछ लोग दूर रहते हैं। आजादी के 75 साल के उपलक्ष्य में कार्यकर्ता निर्माण की प्रक्रिया पर सबसे अधिक महत्त्व देने की जरूरत है।

महाराष्ट्र प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष डॉ. शिवचरण ठाकुर और सर्व सेवा संघ के ट्रस्टी शेख हुसेन ने कहा कि आजादी के 75 साल मनाने के लिए ठोस कार्यक्रमों का आयोजन हो। सारांश, सर्व सेवा संघ कार्यसमिति में करीब चार-पांच घंटे लगातार 'आजादी के 75 साल' मनाने पर बहस, संवाद, चर्चा हुई, जिसमें कई सुझाव आये। सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल ने कहा कि सर्व सेवा संघ द्वारा देश के हर हिस्से में अलग-अलग उपक्रमों द्वारा गांधी विचारों का फैलाव करने में हम पूरी ताकत के साथ कार्यरत रहेंगे और नये युवा कार्यकर्ताओं को बड़ी मात्रा में गांधी विचारधारा से जोड़ने का प्रयास करेंगे। घोषित संकल्प को पूरा करने का वायदा निभायेंगे।

अंत में बजरंग सोनवणे एवं प्रशांत गुजर द्वारा 'फिर धीरे-धीरे यहां का मौसम बदलने लगा है', दुष्यंत कुमार का अनोखा गीत गाया गया और चर्चा का समापन हुआ। ❑

नेहरू का इतिहास बोध विराट, प्रवाहयुक्त और सार्वभौम था

❑ विजय शंकर सिंह

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एक सेमीनार हो रहा था। विषय था, इतिहास लेखन। उस सेमिनार में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक और उर्दू के महान शायर, रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी भी शामिल थे। फिराक नेहरू के मित्र भी थे। उसी गोष्ठी में नेहरू के इतिहास लेखन पर भी चर्चा हुई। एक विद्वान वक्ता ने नेहरू के इतिहास लेखन को इतिहास लेखन के दृष्टिकोण से गंभीर और अकादमिक नहीं माना। प्रख्यात इतिहासकार डॉ ईश्वरी प्रसाद उस गोष्ठी की अध्यक्षता कर रहे थे। उन्होंने कहा, नेहरू इतिहास के विद्यार्थी नहीं रहे हैं, पर अतीत में झाँकने और उसका मूल्यांकन करने का सभी को अधिकार है। उनकी रचनाओं के मूल्यांकन के पूर्व उनकी पृष्ठिभूमि पर भी विचार कर लिया जाय। ईश्वरी प्रसाद 'भारत एक खोज' के प्रशंसक थे। बहस गंभीर हुई। तभी फिराक उठे और उन्होंने बहस में हस्तक्षेप करते हुए कहा, 'तुम इतिहास लिखते हो, उसने इतिहास बनाया है।' फिराक कभी-कभी बदज़ुबां भी हो जाते थे। नेहरू का इतिहास बोध, भारतीय संस्कृति की तरह विराट और विशाल तो था ही, गंगा की तरह अविरल प्रवाहयुक्त और सार्वभौम भी था।

स्वाधीनता संग्राम में नेहरू ने कुल 9 साल कारागार में बिताये। वह लाहौर, अहमदनगर, लखनऊ और नैनी जेलों में रहे। वहीं इनका अध्ययन और लेखन परिपक्व हुआ। कारागार के समय का उन्होंने सकारात्मक सदुपयोग किया। वह सुबह 9 बजे से लिखना पढ़ना शुरू करते थे और देर रात तक उनका यह क्रम चलता रहता था। जेल के एकांत और अवकाश ने उन्हें देश के इतिहास, सभ्यता, संस्कृति और परम्पराओं के अध्ययन और पुनर्मूल्यांकन का अवसर दिया। उनका लेखन आत्ममुग्धता के लिए नहीं, बल्कि देश की एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करने के लिए था, जिस से देश का स्वाभिमान जागृत किया जा सके। उन्होंने कुल चार पुस्तकें लिखीं।

नेहरू की पुस्तकें

1929 में पहली पुस्तक लिखी गयी, 'लेटर्स फ्रॉम ए फादर टू ए डॉटर', जिसमें उन्होंने प्रागैतिहासिक काल का विवरण दिया है। 1934-1935 में उनकी क्लासिक कही जाने वाली पुस्तक, 'The glimpses of world history', (विश्व इतिहास की एक झलक), आयी। 1936 पं. जवाहर लाल नेहरू की आत्मकथा, 'माई ऑटोबायोग्राफी,' और 1946 में दर्शन, इतिहास और संस्कृति को लेकर लिखी गयी पुस्तक 'The Discovery of india' (भारत एक खोज) प्रकाशित हुई। उनके इतिहास बोध को समझने के पूर्व उनकी पुस्तकों के बारे में जानना आवश्यक है।

पिता के पत्र पुत्री के नाम, जो 1929 में प्रकाशित पुस्तक थी, में उनके वे पत्र संकलित हैं, जो इन्होंने इलाहाबाद प्रवास के दौरान लिखी थी। इंदिरा उस समय मसूरी में पढ़ रहीं थीं। इतिहास के साथ, वन्य जीव जंतुओं और अन्य विषयों पर इन पत्रों में उन्होंने अपनी पुत्री की बाल सुलभ जिज्ञासाओं के समाधान की कोशिश की है। यह प्रयास यह भी बताता है कि सार्वजनिक जीवन की तमाम व्यस्तताओं के बीच उनमें एक आदर्श पिता जीवित रहा, जिसने संतान को संवारने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी। अंग्रेज़ी में लिखे इन पत्रों का पुस्तक के रूप में अनुवाद महान उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद ने किया था।

उनका एक पत्र, जिसका उल्लेख यहां करना उचित होगा, वन्य जीव के विकास पर आधारित है। डार्विन के विकासवाद का सिद्धांत तब तक अस्तित्व में आ चुका था। उन्होंने लन्दन स्थित केनिंग्स्टन म्यूजियम में रखे जानवरों के चित्रों पर इस पत्र को केंद्रित किया था। उन्होंने यह लिखा कि ठंडे और शीतग्रस्त क्षेत्रों के जंतु अपने वातावरण के अनुसार ही शुभ्र होते हैं, जबकि गर्म क्षेत्रों के जंतु और वनस्पतियाँ विभिन्न रंगों की होती हैं। उनकी इस धारणा के पीछे कोई वैज्ञानिक शोध हो या न हो, लेकिन बाल सुलभ जिज्ञासा को शांत करने की उनकी यह शैली अद्भुत थी।

इतिहास की उनकी अवधारणा, तिथिक्रम का विवरण और घटनाओं का वर्णन ही नहीं है। विश्व इतिहास की एक झलक, जो 1934-35 में प्रकाशित हुई, में उन्होंने एशिया के साम्राज्यों के उत्थान और पतन पर विहंगम दृष्टि डाली है। अर्नाल्ड टॉयनाबी के 'इतिहास एक अध्ययन' की तर्ज पर उन्होंने सभ्यताओं के उत्थान और पतन को समझने और समझाने का प्रयास किया है, जिससे उनके अध्येता होने का प्रमाण मिलता है। कोई भी व्यक्ति जो विश्व इतिहास की रूपरेखा समझना और जानना चाहता है और संदर्भों की शुष्क वीथिका से बचना चाहता है, वह इसका अध्ययन कर सकता है।

1934 में ही उनकी आत्म कथा 'मेरी कहानी' प्रकाशित हुई। आत्मकथा लेखन एक आधुनिक साहित्य विधा है। पहले खुद के बारे में कुछ कहना और उसे प्रचारित करना आत्ममुग्धता समझा जाता था, इसीलिए पूर्ववर्ती अनेक महान साहित्यकारों के व्यक्तिगत जीवन के बारे में कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं होता है। जो मिलता है, वह या तो किंवदंति के रूप में या समकालीनों द्वारा दिए विवरण के रूप में दी है। स्वयं को पारदर्शिता के साथ देखना बहुत कठिन होता है, वह भी तब, जबकि मनुष्य सार्वजनिक जीवन में हो। पर अपनी आत्मकथा में पं. नेहरू ने जो भी लिखा है, वह उनकी खुद की ईमानदार विवेचना है। आप यूँ भी कह सकते हैं कि उनकी आत्मकथा का काल 1932 में ही ख़त्म हो जाता है, जबकि उनके जीवन के अनेक विवाद इस काल के बाद हुए। सुभाष बाबू के साथ विवाद, भारत विभाजन और प्रधानमंत्री काल के अनेक निर्णय, जिनको लेकर उनकी आलोचना होती है, के

समय की कोई आत्मकथा लिखी ही नहीं गयी। संकट काल और आलोचना से घिरे होने पर, स्वयं को कैसे बिना लाग लपेट के प्रस्तुत किया जाय, इसमें आत्मकथा लेखक की कुशलता और ईमानदारी दोनों ही निहित होती है।

समीक्षकों की दृष्टि में

लन्दन टाइम्स ने पं. नेहरू की पुस्तक मेरी कहानी को उस समय की पठनीय पुस्तकों के वर्ग में रखा था। इस पुस्तक में उनके परिवार, उनकी पढ़ाई और 1933 तक के आज़ादी के लिए किये गए उनके संघर्षों का विवरण मिलता है। उस काल के शोधार्थियों के लिए यह पुस्तक एक सन्दर्भ और स्रोत का भी काम करती है।

उनकी सबसे परिपक्व कृति, भारत एक खोज है। 1944 में यह पुस्तक प्रकाशित हुई। भारतीय मनीषा, सभ्यता और संस्कृति का अद्भुत सर्वेक्षण इस पुस्तक में है। पूर्णतः अंग्रेज़ी परिवेश में पले और पढ़े लिखे नेहरू द्वारा वेदों से लेकर पुराणों तक का अध्ययन, उनके अंदर छिपे प्राच्य दर्शन को दिखाता है। इस पुस्तक में भारत की एक यात्रा है, इतिहास है, परम्पराएँ हैं और संस्कृति की जीवंतता है। नेहरू के जीवनीकार एम जे अकबर इस पुस्तक की लेखन शैली की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। वह बताते हैं कि उनकी दोनों पुस्तकें 'विश्व इतिहास की एक झलक' और 'भारत एक खोज' उन की लेखकीय प्रतिभा को ही नहीं, बल्कि उनके पांडित्य को भी प्रदर्शित करती हैं।

इतिहासकार विपिन चंद्र ने उनकी आत्मकथा को आंशिक इतिहास और इतिहास को आंशिक आत्मकथा माना है। उनके मुताबिक नेहरू ने भूत की त्रुटियों को वर्तमान के सन्दर्भ से जोड़ते हुए वर्तमान को आगाह किया है, तो वर्तमान में ही भूत ढूँढने की कोशिश की है। उन्होंने इतिहास को एक जीवंत अंतहीन यात्रा की तरह प्रस्तुत किया है।

नेहरू इतिहास के विद्यार्थी नहीं थे और न ही वह कोई इतिहासकार थे। अतीत को उन्होंने अपनी नज़र से देखा और उसे प्रस्तुत कर दिया। वह स्वयं अपनी पुस्तक में कहते हैं कि अतीत मुझे अपनी गर्माहट से स्पर्श करता है और जब वह अपनी धारणा से वर्तमान को प्रभावित करता है तो मुझे हैरान भी कर देता है। इतिहासकार ई एच कार ठीक ही कहते हैं, सच में इतिहास वही लिख सकते हैं, जिन्होंने इसकी दिशा को बदलते हुए महसूस किया हो। नेहरू खुद इतिहास के दिशा प्रवर्तक रहे हैं। इतिहास लिखना अतीत के दाय का निर्वहन भी है। उन देशों का इतिहास लेखन कठिन होता है, जहां संस्कृति और सभ्यता की एक विशाल और अनवरत परंपरा रही हो। एशिया के दो महान देशों चीन और भारत के साथ यह समस्या अक्सर इनके इतिहास लेखन के समय खड़ी हो जाती है। ऐसा इसलिए कि न केवल स्रोत और सामग्री की प्रचुरता है, बल्कि अनवरतता भी है। अपने इतिहास लेखन को नेहरू अतीत के प्रति अपना कर्तव्य भी मानते हैं। हम कहाँ से आये हैं और हम कौन है कि आदिम दार्शनिक जिज्ञासा ही नेहरू के इतिहास लेखन का प्रेरणास्रोत रहा है और इसी का प्रतिफल है 'द डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया', या 'भारत एक खोज'। अपनी इतिहास की अवधारणा को वह इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

'A study of history should teach us how the world has slowly but surely progressed…man's growth from barbarism to civilisation is supposed to be the theme of history.'

लोकतांत्रिक और समाजवादी विचारधारा के आग्रही नेहरू

जवाहर लाल नेहरू के समाजवाद की अवधारणा मार्क्सवादी समाजवाद से अलग थी, हालांकि मार्क्स ने उन्हें प्रभावित भी किया था और रूस की सोवियत क्रान्ति के महानायक लेनिन के वे प्रशंसक भी थे, पर इस पाश्चात्य राजनीतिक अवधारणा के बावजूद प्राचीन वांग्मय के प्रति उनका रुझान, उनकी पुस्तकों, विशेषकर भारत एक खोज में खूब दिखा है। वह सभ्यताओं का उद्भव एक सजग जिज्ञासु की तरह खोजते हैं, फिर उसे आधुनिक काल से जोड़ते हैं। वह किसी वाद विशेष के कठघरे में नहीं रुकते हैं पर भारतीय दर्शन के मूल समष्टिवाद को लेकर बढ़ते रहते हैं। भारतीय संस्कृति के वह परम प्रशंसक ही नहीं, बल्कि वे दुनिया की सबसे जीवंत संस्कृति के रूप में इस पर गर्व भी करते हैं। यह उनकी विशाल हृदयता और गहन दृष्टि का परिचायक है।

भारत एक खोज में नेहरू लिखते हैं कि पांच हज़ार साल से प्रवाहित हो रही अविच्छिन्न संस्कृति के काल में डेढ़ सौ साल का ब्रिटिश काल एक दुखद कालखंड है, पर उससे संस्कृति की ऊर्जस्विता और ओजस्विता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

इतिहास में घटनाओं से अधिक व्यक्तित्वों ने उन्हें प्रभावित किया है। व्यक्तित्व घटनाएं गढ़ते हैं या व्यक्तित्व घटनाओं की उपज हैं, इस पर भी बौद्धिक विमर्श हो सकता है, पर दोनों ही एक दूसरे से जुड़े हैं। उन्नीसवीं सदी के इतिहास लेखन में वे व्यक्तित्व की प्रतिभाओं से चमत्कृत होते हैं। वह मुस्तफा कमाल पाशा से बहुत प्रभावित दिखते हैं। उन्होंने इतिहास को वैश्विक समग्रता से देखा है, इसलिए वे एक वैश्विक गाँव का इतिहास प्रस्तुत करते हैं। एक देश की घटनाएं दूसरे को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती हैं। पूरी दुनिया के एक गांव में बदल जाने की प्रक्रिया उन्नीसवीं सदी से ही शुरू हो गयी थी।

नेहरू का एक इतिहास के विद्यार्थी या इतिहासकार के रूप में मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। उन्होंने इतिहास के छात्रों और शोधार्थियों के लिए इतिहास नहीं लिखा है। 'विश्व इतिहास की एक झलक' विश्व इतिहास की कोई टेक्स्ट बुक नहीं है। पर यह विश्व की महान संस्कृतियों के प्रवाह को दिखाती है। 'मेरी कहानी' उनकी आत्म कथा तो है, पर वह आज़ादी के संघर्ष के एक कालखंड का इतिहास भी समेटे है। 'भारत एक खोज' भारत की एक दार्शनिक यात्रा है। हज़ारों साल से अस्मिता पर जो हमला हुआ था, धर्म और समाज में जो विकृतियां आ गयीं थीं, उन सब के बावजूद भी, सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति की अकलुषित आत्मा की खोज है यह पुस्तक। इसमें, धर्म है, दर्शन है और इतिहास है। नेहरू के सारी कृतियों में यह सबसे गंभीर और परिपक्व पुस्तक है। ❑

अधूरी है मिशनरियों के बारे में आरएसएस की समझ

❑ राम पुनियानी

आरएसएस चिंतक और राज्यसभा सदस्य राकेश सिन्हा ने कहा है कि अब समय आ गया है कि हम 'ईसाई मिशनरी भारत छोड़ो' अभियान शुरू करें। उनके अनुसार, ईसाई मिशनरियां आदिवासी संस्कृति को नष्ट कर रही हैं और भारत में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग करते हुए आदिवासियों का धर्म परिवर्तन करवा रही हैं। इसके पहले एक बार उन्होंने एक ट्वीट कर कहा था कि क्या हमें मिशनरियों की जरूरत है? वे हमारे 'आध्यात्मिक प्रजातंत्र के लिए खतरा हैं। नियोगी आयोग की रपट (1956) ने उनकी पोल खोल दी थी, परंतु नेहरूवादियों ने उन्हें साम्राज्यवाद के एक आवश्यक अवशेष के रूप में संरक्षण दिया। या तो भारत छोड़ो या भारतीय चर्च गठित करो और यह घोषणा करो कि धर्म परिवर्तन नहीं करवाओगे।''

सिन्हा के अनुसार, मिशनरियां आध्यात्मिक प्रजातंत्र के लिए खतरा हैं। आइये हम देखें कि आध्यात्मिक प्रजातंत्र से क्या आशय है। मेरे विचार से आध्यात्मिक प्रजातंत्र का अर्थ है कि भारतीय संविधान की निगाह में सभी धर्म बराबर हैं और सार्वभौमिक नैतिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। कई लेखकों का यह मानना है कि दरअसल भारत के आध्यात्मिक प्रजातंत्र को सबसे बड़ा खतरा जाति और वर्ण व्यवस्था से है। जो लोग भारत में जाति और वर्ण व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं, वे भारत के आध्यात्मिक प्रजातंत्र के सबसे बड़े शत्रु हैं। यह बात सिन्हा को अपनी पार्टी के वरिष्ठ नेताओं लालकृष्ण आडवाणी और अरुण जेटली से सीखनी चाहिए थी। ये दोनों ईसाई मिशनरी स्कूलों में पढ़े। सिन्हा अगर कोशिश करेंगे तो उन्हें अपनी विचारधारा के ऐसे बहुत से दूसरे नेता भी मिल जाएंगे, जिन्होंने मिशनरी स्कूलों में अध्ययन किया होगा।

भारत में ईसाई धर्म का इतिहास और महात्मा गांधी

मिशनरियों के विरुद्ध जो आरोप लगाए जाते हैं, वे न केवल आधारहीन हैं, बल्कि ईसाई धर्म के बारे में मूलभूत जानकारी के अभाव को भी प्रतिबिंबित करते हैं। सिन्हा के दावे के विपरीत, मिशनरियां साम्राज्यवाद का अवशेष नहीं हैं। भारत में ईसाई धर्म का इतिहास बहुत पुराना है। भारत में पहली ईसाई मिशनरी 1952 में आई थी, जब सेंट थॉमस मालाबार तट पर उतरे थे और उन्होंने उस क्षेत्र, जो अब केरल है, में चर्च की स्थापना की थी। विभिन्न भारतीय शासकों ने मिशनरियों के आध्यात्मिक पक्ष को देखते हुए उनका स्वागत किया और अपने-अपने राज्य क्षेत्रों में उन्हें उपासना स्थल स्थापित करने की इजाजत दी। महाराष्ट्र के लोकप्रिय शासक छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपनी सेना को यह निर्देश दिया था कि यह सुनिश्चित किया जाए कि हमले में फॉदर अम्ब्रोज के आश्रम को क्षति न पहुंचे। इसी तरह अकबर ने अपने दरबार में ईसाई प्रतिनिधियों का सम्मानपूर्वक स्वागत किया था।

महात्मा गांधी, हिन्दू धर्म, इस्लाम और अन्य धर्मों की तरह ईसाई धर्म को भी भारतीय धर्म मानते थे। उन्होंने लिखा था 'हर देश यह मानता है कि उसका धर्म किसी भी अन्य धर्म जितना ही अच्छा है। निश्चय ही भारत के महान धर्म उसके लोगों के लिए पर्याप्त हैं और उन्हें एक धर्म छोड़कर दूसरा धर्म अपनाने की जरूरत नहीं है।' इसके बाद वे भारतीय धर्मों की सूची देते हैं। 'ईसाई धर्म, यहूदी धर्म, हिन्दू धर्म और उसकी विभिन्न शाखाएं, इस्लाम और पारसी धर्म भारत के जीवित धर्म हैं (गांधी कलेक्टिड वर्क्स खंड 47, पृष्ठ 27-28)। वैसे भी सभी धर्म वैश्विक होते हैं और उन्हें राष्ट्रों की सीमा में नहीं बांधा जा सकता।

भारत में ईसाई मिशनरियां क्या करती हैं?

यह सही है कि 1960 के दशक के पहले तक भारत में दूसरे देशों, विशेषकर पश्चिमी देशों से मिशनरी आया करते थे। परंतु अब भारत के अधिकांश चर्च हर अर्थ में भारतीय हैं। वे भारतीय संविधान की हदों के भीतर काम करते हैं। वे मुख्यतः आदिवासी क्षेत्रों और निर्धन दलितों की बस्तियों में शिक्षा और स्वास्थ्य से जुड़े काम करते हैं। इसके अलावा वे शहरों में स्कूल भी चलाते हैं, जिनमें आडवाणी, जेटली और उनके जैसे अन्य महानुभाव पढ़ चुके हैं।

मिशनरियां आदिवासियों की संस्कृति को भला कैसे नष्ट कर रही हैं? मूलभूत आवश्यकताओं की कमी से जूझ रहे इन लोगों को स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध करवाना उनकी संस्कृति को नष्ट करना कैसे है? वैसे भी संस्कृति कोई स्थिर चीज नहीं होती। वह एक सामाजिक अवधारणा है, जो संबंधित समाज के लोगों के अन्य लोगों के संपर्क में आने से परिवर्तित होती रहती है। इस सिलसिले में संयुक्त राष्ट्र संघ की बेहतरीन रपट 'सभ्यताओं का गठजोड़' का अध्ययन करना चाहिए, जिसमें मानवता के इतिहास का अत्यंत सारगर्भित वर्णन करते हुए कहा गया है कि दुनिया का इतिहास दरअसल संस्कृतियों, धर्मों, खानपान की आदतों, भाषाओं और ज्ञान के गठजोड़ का इतिहास है और इसी गठजोड़ के चलते मानव सभ्यता की उन्नति हुई है।

सच तो यह है कि अगर आदिवासियों के आचरण में कोई परिवर्तन कर रहा है तो वे हैं विहिप और वनवासी कल्याण आश्रम जैसे संगठन। पिछले चार दशकों में आदिवासी क्षेत्रों में शबरी कुंभ का आयोजन कर और हनुमान की मूर्तियां लगाकर इन संगठनों ने आदिवासियों के आराध्यों को बदलने का प्रयास किया है। आदिवासी मूलतः प्रकृति पूजक हैं। उन्हें मूर्ति पूजक बनाना क्या उनकी संस्कृति को परिवर्तित करने का प्रयास नहीं है?

पॉस्टर स्टेन्स की हत्या और आंकड़े

जहां तक धर्म परिवर्तन का प्रश्न है, सन् 1956 में प्रस्तुत की गई नियोगी आयोग की रपट में निःसंदेह यह कहा गया था कि मिशनरियां धर्म परिवर्तन करवा रही हैं। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि कुछ मिशनरियां धर्म परिवर्तन करवा रही होंगी। वैसे भी हमारा संविधान सभी धर्मों के लोगों को अपने धर्म का आचरण करने और उसका प्रचार करने का अबाध अधिकार देता है। सिक्के का

दूसरा पहलू भी है। पॉस्टर स्टेन्स और उनके दो नाबालिग बच्चों की हत्या उन्हें जिंदा जलाकर कर दी गई थी। इसके आरोप में बजरंग दल का राजेन्द्र सिंह पाल उर्फ दारासिंह जेल की सजा काट रहा है। उस समय यह प्रचार किया गया था कि पॉस्टर स्टेन्स आदिवासियों को ईसाई बना रहे हैं, जो हिन्दू धर्म के लिए खतरा है।

एनडीए सरकार द्वारा नियुक्त वाधवा आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पॉस्टर स्टेन्स द्वारा धर्म परिवर्तन नहीं करवाया जा रहा था और उड़ीसा के जिस इलाके (क्योंझार-मनोहरपुर) में वे काम कर रहे थे, वहां ईसाइयों की आबादी में कोई वृद्धि नहीं हुई थी। धर्म परिवर्तन के आरोप के संदर्भ में जनगणना संबंधी आंकड़े दिलचस्प जानकारी देते हैं। भारत में ईसाई धर्म 52 ईस्वी में आया था। सन् 2011 में ईसाई, भारत की कुल आबादी का 2.30 प्रतिशत थे। सन् 1971 में भारत की आबादी में ईसाइयों का प्रतिशत 2.60 था। 1981 में यह आंकड़ा 2.44, 1991 में 2.34 और 2001 में 2.30 था। इस प्रकार भारत में ईसाइयों की जनसंख्या या तो स्थिर है या उसमें गिरावट आई है। ईसाई धर्म में परिवर्तन से हिन्दू धर्म को खतरा होने की बात बकवास है। परंतु यह डर जान बूझकर फैलाया जा रहा है।

वास्तविकता यह है

भारत में जबरदस्ती या लोभ-लालच से धर्म परिवर्तन रोकने के लिए पर्याप्त कानून हैं। 'ईसाई मिशनरियों भारत छोड़ो' जैसे नारे देश पर हिन्दू राष्ट्रवादी एजेंडे को थोपने का प्रयास हैं। अगर मिशनरियां आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवा रही हैं, तो इससे आदिवासी संस्कृति को खतरा होने की बात कहना बचकाना है और अगर कुछ मिशनरियां धर्म परिवर्तन के काम में लगी हैं तो भी यह उनका अधिकार है। हां, अगर वे जोर-जबरदस्ती या लालच देकर किसी को ईसाई बना रही हैं तो उनके खिलाफ उपयुक्त कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए। परंतु उन्हें भारत छोड़ने का आदेश देना अनौचित्यपूर्ण और असंवैधानिक है।

तथ्य यह है कि हिन्दू एक बहुदेववादी धर्म है, जिसके अपने धर्मग्रंथ और तीर्थस्थल हैं। इसके विपरीत आदिवासी प्रकृति पूजक हैं, उनके कोई धर्मग्रंथ नहीं हैं और न ही मंदिर और तीर्थस्थान हैं। ❑

बीज-यात्रा

13-25 जुलाई 2021

टिहरी सर्वोदय मंडल की रिपोर्ट

'बीज' एक व्यापक अवधारणा है। धरती पर समस्त के प्रस्फुटन-फैलाव का कारण 'बीज' ही है। बीज यानी मनुष्यता के बीज, विचार के बीज, सामाजिक (परस्पर मैत्री-संवाद) के बीज, लोकतांत्रिक व्यवस्था के बीज, प्रकृति में समृद्धि के बीज, कृषि-पशुपालन-कारीगरी और वनों की समृद्ध परंपरा के बीज, जो सर्वत्र बिखरे हैं और जो कालांतर में वैभवित होते रहते हैं। बीज की महिमा को समझकर पहाड़ी समाज ने समृद्ध-अभय समाज की नींव रखी और विविध लोकतांत्रिक परंपराओं को गढ़ा। सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्था की बुनियाद को भी बीज व माटी के संबंधों को समझकर सृजित किया।

लेकिन पिछले डेढ़ साल में मानव जनित एक महामारी ने दुनिया भर के लोगों को शारीरिक-मानसिक व आर्थिक स्तर पर गहरा प्रभावित किया है। इससे जहां मानवीय क्षति बढ़ी, वहीं मनुष्य के सामाजिक ताने-बाने की बुनियादें भी हिलीं। एक ऐसा दौर चल रहा है, जहां निराशा व भय का वातावरण व्याप्त है। या कहें कि तथाकथित मीडिया के माध्यम से लोगों के दिमागों पर नियंत्रण हेतु ऐसा माहौल निर्मित किया जा रहा है कि लोग एक-दूसरे से मिलने-जुलने में भी कतराने लगे हैं। मानव जाति का भविष्य क्या होगा, लोग इसपर चिन्तित हैं। पहाड़ी समाज में भी कमोवेश यही स्थिति है।

चौतरफा असुरक्षा भरे इस वातावरण में सर्वोदय आंदोलन ने एक आशाजनक माहौल बनाने की ठानी। वरिष्ठ सर्वोदयी धूमसिंह नेगी की प्रेरणा व मार्गदर्शन में तय हुआ कि हम 'बीज-यात्रा' के माध्यम से लोगों के बीच जायें, जिससे परस्पर मैत्री-संवाद की प्रक्रिया को पुनः आगे बढ़ाया जा सके। इस 'बीज-यात्रा' के संयोजन की जिम्मेदारी टिहरी सर्वोदय मंडल के संयोजक साहब सिंह सजवाण ने ली और दो व्यक्तियों का यात्री दल कुंवर प्रसून स्मृति कुटिया, रायपुर से पदयात्रा प्रारंभ कर 'बीज यात्रा' के लिए चल पड़ा। यात्रा के प्रथम चरण में हेवलघाटी, बालगंगा, भिलंगना व अगलाड़ नदी घाटी के गांवों-कस्बों में पदयात्रा व आवश्यकतानुसार वाहन यात्रा कर संपर्क-संवाद स्थापित किया गया। इस बीच लोक सांस्कृतिक क्रांति गीतों का गायन भी होता रहा। यात्रा के अधिकांश पड़ाव टिहरी जिला अंतर्गत ही आते हैं।

इस पूरी यात्रा के दौरान बीज यात्री नदी-घाटी के सैकड़ों गांवों-कस्बों से होकर गुजरे और लोगों से संपर्क किया। पूरी यात्रा के दौरान यात्री जहां भी ठहरे, वहां सामूहिक लोक प्रार्थना गीत व क्रांतिगीतों के माध्यम से मानसिक वातावरण को स्वस्थ करने की कोशिश की। लोगों से लोकतंत्र, अर्थव्यवस्था, वर्तमान में खेती की स्थिति, सामाजिक-सार्वजनिक कार्यक्रमों पर खुला संवाद हुआ। क्योंकि इस वक्त खेतों में तमाम तरह की फसलें खड़ी हैं। इन फसलों का भी प्रत्यक्ष अध्ययन किया गया। इसी यात्रा के दौरान पता चला कि पारंपरिक अनाज कोदा, झंगोरा, कौड़ी जैसे अनाजों की खेती अब काफी कम हो गयी है, फिर भी लोग बो रहे हैं। लेकिन चींड़ा जैसा अनाज कहीं नहीं दिखा। उसको लोगों ने बोना लगभग बंद कर दिया है। वहीं जौनपुर (अगलाड़ घाटी) के खेतों में मकई की फसलें लहलहाती मिलीं।

सर्वोदय खेती का प्रयोग

कुंवर प्रसून स्मृति कुटिया, रामपुर में 2018 से सर्वोदयी खेती का प्रयोग किया जा रहा है। जुलाई 2021 में इन खेतों में कोदा, झंगोरा, कौड़ी, बाजरा, मकई, उड़द, मटर, गहत, लोबिया, नौरंगी, तोरदाल, जसिया, तिल, भंगजीर, अरवी, पिनालू, हल्दी, तल्ड, बैंगन, चेरी टमाटर, खीरा, ककड़ी, लौकी, तुमड़ी, कद्दू, करेला, चचेण्डा, सेमीफली, तोरई, मिर्च, चौलाई, हिमालयन बथुआ, मूली, भिण्डी, लेमनग्रास, मरुवा, ब्राह्मी, भूमि आंवला आदि फसलें लहलहा रही हैं। ये फसलें प्राकृतिक-जैविक तरीके से परंपरागत पहाड़ी कृषि शैली के आधार पर उगायी जा रही हैं।

-साहब सिंह सजवाण/सुदेशा बहन

महिला कैदी
अंतहीन है यातना की कहानियां

❑ चन्द्रकला

सावित्री को जेल में 6 साल हो गये हैं। जमानत तो नहीं हुई, केस भी जाने कब खतम होगा? पति के अत्याचारों से तंग आने पर एक दिन हाथापाई में उसकी (पति की) हत्या हो गयी। अब मायके और ससुराल वालों के साथ ही बच्चे भी पिता की हत्यारिन मानकर उसकी सुध नहीं लेते हैं।

रामरति से उसके अपनों ने भी इसलिए मुंह फेर लिया कि पति और ससुराल वालों के अत्याचारों से तंग आकर अपने दोनों बच्चों को मारकर खुद पंखे से लटक गयी, लेकिन बच गयी। वह मरी तो नहीं, लेकिन अब जिन्दा लाश बनकर जेल काटने को मजबूर है।

फरज़ाना की बहू ने गुस्से में जहर खा लिया, दहेज हत्या में बेटा और मां दोनों पिछले आठ साल से जेल में हैं। कोई करीबी नहीं है, जो भागदौड़ करके उनकी हाईकोर्ट से जमानत करवा ले।

महज 19 साल की थी जब संगीता जेल में आयी, प्रेमी के साथ पति की हत्या में शामिल होने के अपराध में। तीस साल की होने को है, न प्रेमी ने पूछा, न मायके वालों ने। सीधी-सादी गांव की बहू जेल के कायदे सीख कर दबंग तो हो गयी है, लेकिन उसके भीतर का दर्द उसकी खामोश आंखें बयां करती हैं।

यातना की अंतहीन यात्रा

आज़ादी का ख्वाब दिल में पाले देश की जेलों में कैद महिलाओं की अनगिनत कहानियां हैं। इनमें से कुछ तो गुनाहगार हैं लेकिन कितनी ही बेगुनाह हैं। यह आमतौर पर कानून नहीं, बल्कि पुलिस के गढ़े गये सबूतों के साथ-साथ समाज और अदालतों का पितृसत्तात्मक नज़रिया तय करता है। कुछ पेशेवर अपराधी महिलाओं को छोड़ दें तो अधिकांश महिलाएं सामाजिक मूल्यों और महिला विरोधी परम्पराओं के दबाव, पुरुषों द्वारा गुलाम बनाकर रखने की मनोवृत्ति और औरत के प्रति परिवार के उपेक्षित रवैये के कारण अपराधी बन जाती हैं या बना दी जाती हैं, जिस पर अभी बहुत कुछ लिखा जाना बाकी है।

आमतौर पर जेलों में परिजनों का आना खर्चीला होता है, यदि कैदी स्थानीय जेल में न हों तो यह खर्च और भी बढ़ जाता है। चूंकि महिला बन्दियों का स्वतन्त्र आर्थिक अस्तित्व नहीं होता, इसलिए उनसे मुलाकात करने आने वालों का प्रतिशत भी बहुत कम होता है। इसके साथ ही महिला अपराधियों के प्रति समाज का नज़रिया पुरुषों की अपेक्षा अधिक नकारात्मक होता है, जिससे उनकी मिलाई प्रभावित होती है। महिला जेलों की संख्या कम होने से भी कई बार महिलाओं को दूर की जेलों में भेज दिया जाता है, इसलिए परिजनों की मिलाई और मुश्किल हो जाती है। हमारे देश की जेलें सबसे पिछड़े और प्रतिक्रियावादी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसलिए जेल बन्दी महिलाओं के लिए परम्पराएं, धर्म, सामाजिक मानदण्ड के साथ ही कानून भी ज्यादा कठोर हो जाते हैं।

उनको जेल में आते ही नैतिक और सामाजिक रूप में अपराधी मान लिया जाता है और उसका आकलन आमतौर पर अश्लील नज़रिये से किया जाता है। गरीब, आदिवासी और दलित महिला बन्दियों की समस्याएं तो दुगनी होती हैं। उन्हें जेल कर्मचारियों के अतिरिक्त सवर्ण और दबंग महिला बन्दियों की क्रूरताओं का भी सामना करना पड़ता है। देश की कई जेलों से महिलाओं के साथ होने वाली यौन हिंसा की घटनाओं का छन-छन कर बाहर आना इसको पुष्ट करता है। समाज के पिछड़ेपन और अमानवीयता का नग्न रूप कई मायनों में जेल में दिखता है।

जब महिला बन्दियों को कोर्ट की पेशी के लिए ले जाया जाता है तो महिलाएं पूरे दिन संकोच और डर से पेशाब अथवा अन्य प्राकृतिक जरूरतें नहीं बता पाती हैं। यहाँ पर महिला बन्दियों के लिए कोई अलग व्यवस्था पहले तो होती नहीं है, यदि हो भी तो वहां तक जा पाने की राह बहुत कठिन होती है। ऐसे में बन्दी महिलाएं तमाम तरह की शारीरिक और मानसिक परेशानियों से गुजरती हुई न जाने कितनी प्रकार की बीमारियों को ढोती हैं।

लैंगिक आधार पर उत्पीड़न

भारतीय जेलें पुलिस महकमे की भागीदारी के बिना अधूरी ही मानी जायेंगी। यह तथ्य किसी से छिपा नही है कि आज भी पुलिस-प्रशासन का लैंगिक दृष्टिकोण सामन्ती और पिछड़ा है। यहां तक कि महिला पुलिस अधिकारी और कर्मचारी भी उन्हीं महिला विरोधी मानदण्डों और गालियों का प्रयोग बेधड़क करती हैं, जो पुरुषों द्वारा किये जाते हैं। यहां पर सवर्ण व पितृसत्तात्मक मानसिकता का इतना अधिक प्रभाव होता है कि पुलिसकर्मी महिला मामलों को संवेदनशील तरीके से हल करते ही नहीं हैं। अधिकांश तो महिला को अपराधी सिद्ध कर देने भर की ड्यूटी तक ही सीमित रहते हैं। कई बार यह देखा गया है कि

महिला पुलिसकर्मी महिला अपराधियों के साथ ज्यादा अमानवीय और अभद्र व्यवहार करती हैं। चोरी, देह व्यापार से जुड़ी या गरीब महिला अपराधियों, विशेषकर दलितों और मुस्लिम महिलाओं की गिरफ्तारी के समय पुलिसकर्मी नियमों का पालन नहीं करते हैं। पुरुष पुलिसकर्मियों द्वारा महिला कैदियों के साथ महिला पुलिसकर्मी की उपस्थिति में भी अपमानजनक व्यवहार किया जाता है, लेकिन वे या तो चुप लगा जाती हैं या फिर इस प्रक्रिया में काफी हद तक शामिल हो जाती हैं।

गंदगी के ढेर के बीच नारकीय जीवन

जेल के शौचालय गन्दगी के ढेर होते हैं। आमतौर पर महिला बैरकों के भीतर एक शौचालय होता है, जिसका इस्तेमाल 40 से 50 महिलाओं को लगभग 12 घण्टे (शाम 6 बजे से सुबह 6 बजे तक) तो करना होता है। बैरक के बाहर भी तीन या चार शौचालय ही होते हैं और इतने गन्दे कि न जाने कितने प्रकार की बीमारियों के कीटाणु वहां मौजूद होते हैं। इनकी सफाई आज भी दलित जाति की महिला और पुरुष के जिम्मे होती है। जेलों में जगह की कमी, शौचालय की कमी, पानी की कमी के कारण महिला बन्दी असमय ही कई प्रकार की बीमारियों से ग्रसित हो जाती हैं।

एक स्त्री रोग विशेषज्ञ, नर्स या महिला हेल्थ वर्कर आदि की नियुक्ति या समय-समय पर महिलाओं की जांच की व्यवस्था का कोई प्रावधान देश की अधिकांश जेलों में आज तक नहीं किया गया है। महिला बंदियों को कई प्रकार की यौनिक व माहवारी सम्बन्धी दिक्कतों सामना करना पड़ता है। जेल मैन्युयल के अनुसार उन्हें सैनेटरी नैपकीन या कपड़ा मिलना चाहिए। लेकिन अधिकांश जेलों में अन्य जरूरी मदों की तरह इसका व्यय भी भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है और हर माह का इन्तजाम करना महिलाओं की व्यक्तिगत जिम्मेदारी हो जाती है।

स्त्री-विरोधी मानसिकता का शिकार

अदालतों में बन्दी महिलाओं के प्रति पुलिस से लेकर अदालतों में मौजूद कर्मचारी, वकील और जज आदि का महिला विरोधी नजरिया भी महिला बन्दियों के तनाव को बढ़ाने में सहायक होता है। महिला बन्दियों को पुरुष बन्दियों के साथ एक ही गाड़ी में जिस तरह से ले जाया जाता है, उसको भी रेखांकित करने की सख्त ज़रूरत है। हालांकि महिला बन्दियों की संख्यानुसार उनके साथ महिला गार्ड को बैठना होता है। लेकिन वे पुरुष बन्दियों की भीड़ से खुद को बचाने की खातिर ड्राइवर के साथ वाली सीट पर बैठ कर जाती हैं और महिलाओं को पुरुष बन्दियों के भरोसे छोड़ दिया जाता है। यहाँ उनके साथ जो व्यवहार होता है, उसको किसी को बताने और न बताने की जो यातना होती है, उसको एक महिला बंदी ही समझ सकती है। यानी कोई औरत यदि जेल जाती है तो उसकी स्वतन्त्रता छीनने के साथ ही उसकी निजता भी छीन ली जाती है। यह तो भारतीय महिला जेल बन्दियों के जीवन की महज एक छोटी-सी तस्वीर भर है।

दयनीय स्वास्थ्य सेवाएँ

वर्तमान समय में जबकि स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण पहलू बना हुआ है, महिला बन्दियों की जीवन स्थितियों और जेल की स्वास्थ्य सेवाओं पर भी गम्भीर विचार करने की जरूरत है।

इस समय में जबकि स्वास्थ्य समस्याएं अपने चरम पर हैं, तब क्या महिलाओं के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है? तथ्यानुसार समाज में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं के स्वास्थ्य की अनदेखी की जाती है। जब बाहरी समाज में ही स्वास्थ्य सेवाएं बदहाल अवस्था में हैं तो जेल-बन्दियों के स्वास्थ्य की देखभाल तो दूर का सपना है। जेल के भीतर महिला बन्दियों को न केवल शारीरिक तौर पर बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, बल्कि उन्हें कई प्रकार के मानसिक दबावों से भी रूबरू होना पड़ता है। चूंकि अधिकांश जेलों की सारी व्यवस्था पुरुषों के हाथ में होती है, इसलिए यहां पर कार्यरत नाममात्र की महिला कर्मचारी स्वतः ही पितृसत्तात्मक मूल्यों की वाहक बनती चली जाती हैं और महिला बन्दियों के हितों की रक्षा करने के बजाय अपनी सत्ता का दुरुपयोग करती हैं। परिणामस्वरूप जेल सुधारगृह के बजाय यातनागृह में तब्दील हो जाते हैं।

बिहार के केन्द्रीय कारागार में सजा काट चुकी एक महिला ने प्रधानमंत्री को एक खत लिखा है कि जेल में महिला बन्दियों को शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिए मजबूर किया जाता है। ऐसा न करने पर बेरहमी से पिटाई की जाती है। सजायाफ्ता या लम्बा समय जेल में बिताने वाले बंदियों से जेल प्रशासन अनधिकृत काम करवाता है, जिससे इन बन्दियों को सामान्य बंदियों पर रुआब दिखाने का अवसर मिल जाता हैं। जेल की भाषा में ये बंदी 'राइटर' कहलाते हैं।

चूंकि हमारे पूरे समाज में महिलाओं के स्वास्थ्य को लेकर नकारात्मक नज़रिया है, तो उसका प्रभाव जेल में बखूबी दिखता है। जेल में लम्बा समय बिताने और परिवार की उपेक्षा के कारण कितनी ही महिलाएं मानसिक रोगों की शिकार हो जाती हैं। लेकिन इसको स्वास्थ्य की नज़र से देखने के बजाय महिला को उद्दण्ड मानकर उसकी पिटाई की जाती है। जब आमतौर पर ही हमारे समाज में स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता नहीं है तो फिर जेल में तो और भी पिछड़ा माहौल होता है। बन्दियों की मानसिक दिक्कतों को समझना और उनको हल करने की दिशा में उपयुक्त डॉक्टरों की नियुक्ति इत्यादि की व्यवस्था देश के एक या दो जेलों में ही है। मानसिक स्वास्थ्य के प्रति अभी हमारे भारतीय समाज में जागरूकता बहुत कम है। एक लाख भारतीयों में महज़ 0.2 प्रतिशत मनोचिकित्सक हैं। ऐसे में जेल में मनोचिकित्सकों की उपलब्धता की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

भारत में आमतौर पर 45 से 50 वर्ष में माहवारी ख़त्म हो जाती है। इस समय में महिलाओं के शरीर में कई प्रकार के हार्मोनल बदलाव होते हैं। तनाव, बेचैनी, घबराहट चिड़चिड़ापन और गुस्से आने जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। कायदे से इस समय होने वाले शारीरिक-मानसिक बदलावों पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी होता है, लेकिन जब सामान्य जीवन में ही हमारे समाज में इस विषय पर जागरूकता नहीं है तो बंदियों के बारे में कोई कैसे सोच सकता है? जेल के भीतर महिला जेलों में आमतौर पर महज एक पुरुष कम्पाउंडर के भरोसे ही महिला बन्दियों का स्वास्थ्य छोड़ दिया जाता

है। यहां पर ऐसी सम्भावना ही नहीं होती है कि महिलाएं अपनी परेशानी खुलकर बता पायें।

मानवीय सहूलियतों और अधिकारों से वंचित

भारत की जेलों की व्यवस्था को आज भी पुरुष कैदियों के नज़रिये से देखा जाना हमारे पितृसत्तात्मक समाज की विडंबना है। महिला कैदियों के लिए खेल और मनोरंजन आदि के विषय में भी बहुत कम सोचा जाता है, इसलिए किसी प्रकार की आधुनिक सुविधाएं नहीं दी जाती हैं। महिलाओं को गीत-कीर्तन इत्यादि में मन लगाने की नसीहतें दी जाती हैं अथवा पापड़, सिलाई, बुनाई अथवा महिला सुलभ कार्यों को करने का आदेश दिया जाता है। कोई महिला यदि पढ़ने के लिए लाइब्रेरी से किताबों की मांग करती है तो धार्मिक किताबें पढ़ने को कहा जाता है। पहनावे पर भी महिलाओं पर कई प्रकार की पाबन्दियां लगायी जाती हैं।

देश भर की 1350 जेलों में महिला जेल महज 31 हैं, जिसमें से 15 राज्यों और दिल्ली केन्द्रशासित राज्य में हैं। द वायर के अनुसार महिलाओं के लिए मात्र एक खुली जेल 2010 में पुणे के यरवदा में बनायी गयी है, जबकि पुरुषों की खुली जेल 1953 में ही बना दी गयी थी। अन्य जगहों पर जेल के भीतर ही महिलाओं को रखा जाता है। सबसे अधिक 7 महिला जेल राजस्थान में हैं।

जेल में जो महिला कैदी आती हैं, उनमें 2019 के आंकड़ों के अनुसार 27 प्रतिशत अशिक्षित हैं और 41.6 प्रतिशत 10वीं से कम पढ़ी हुई हैं। इनमें ज्यादा संख्या ग्रामीण और गरीब महिलाओं की ही होती है। इन महिलाओं को अपने ऊपर लगे अपराधों की धाराओं का ज्ञान तो जेल में आकर हो जाता है, लेकिन पूरी न्यायिक प्रक्रिया की जानकारी न होने और वकील के खर्चों का इन्तजाम न कर पाने के कारण कई बार अपराध की सज़ा से अधिक समय तक जेल में रहने को मजबूर होना पड़ता है। जेल कर्मचारियों और पुरुष बंदियों द्वारा कई बार जेल से बाहर निकालने के नाम पर महिलाओं का शोषण भी किया जाता है। महिला का शिक्षित होना सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक रुतबा समाज की तरह जेल जीवन को भी प्रभावित करता है। यदि बन्दी के परिजन समय-समय पर पैसा देते रहते हैं तो उसकी हैसियत बेहतर होती है। मिलाई के पैसों से लेकर जो सामान घर से आता है, उसका हिस्सा जेल वार्डन को देना जेल का अघोषित नियम है। जो जितना अधिक देता है, उसकी सुविधाएं भी उसी अनुरूप तय होती हैं। कुछ बन्दी जो जेल कर्मचारियों की चापलूसी करती हैं, उनको भी कई प्रकार की सहूलियतें मिल जाती हैं। इस सबका खामियाजा गरीब और उन बन्दियों को भुगतना पड़ता है, जिनकी कोई मिलाई नहीं आती है।

बंदी माँ के साथ बेगुनाह बच्चे

ग्लोबल प्रिज़न ट्रेंड्स 2020 के अनुसार पूरी दुनिया में 19 हजार बच्चे अपनी बंदी माँओं के साथ जेल में रहते हैं। पिछले एक दशक से कुल महिला बंदियों में से करीब 9 प्रतिशत भारत की जेलों में अपने बच्चों के साथ रहती आई हैं। बच्चों वाली बन्दी माँओं के हालात इसलिए ज्यादा खराब होते हैं कि उनके कारण उनके बच्चों का जीवन असन्तुलित हो जाता है। कई बार यदि माँ को लम्बे समय जेल में रहना पड़ता है तो छः साल से अधिक उम्र के बच्चों की सरकार दूसरी व्यवस्था करती है। अलग-अलग राज्यों में इसके लिए अपनी-अपनी व्यवस्थाएं हैं। गर्भवती महिलाओं और बच्चों के लिए अतिरिक्त पोषक भोजन का प्रावधान जेल मैनुअल में किया गया है। लेकिन बहुत कम जेलों में ही वह पूरी मात्रा मिल पाती है? कपड़ों और अन्य बुनियादी जरूरतों के विषय में भी जेल मैनुअल में कई प्रवाधान हैं, लेकिन व्यवहार में इस पर अमल नहीं किया जाता है। जब पुरुष कैदियों के भोजन और रखरखाव के लिए आंवटित बजट की न्यूनतम मात्रा भी उन पर खर्च नहीं की जाती है तो महिलाओं के लिए तो यह उम्मीद और भी कम हो जाती है।

जेल के भीतर जेल में महिला कैदी

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 31 दिसम्बर 2019 के अन्त तक भारतीय जेलों में कुल 19 हजार 913 कैदी महिलाएं थीं, जिनमें से केवल 18.3 प्रतिशत (3,652) महिलाएं, महिला जेलों में बन्द हैं। जबकि 81.7 प्रतिशत (16,261) पुरुष जेलों के भीतर मौजूद महिला बैरकों (यानी जेल के भीतर जेल) में बन्द हैं। 2019 के अपराध रिकार्ड संख्या के अनुसार जेलों में महिलाओं की संख्या क्षमता से 56.09 प्रतिशत अधिक है। यदि केवल महिला जेलों की बात करें तो उनमें भी केवल 6 हजार 511 महिला बन्दियों को रखने की क्षमता है। पुरुष जेलों के भीतर महिला जेल का यह आंकड़ा 76.7 प्रतिशत है। पूरे देश की जेलों में कुल सजायाफ्ता महिला बंदी 6179 हैं, विचाराधीन 13550 महिला बंदी हैं तो 680 डिटेन और 85 अन्य प्रकार की महिला बंदी हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि महिला बन्दियों के मानवाधिकारों पर नये सिरे से विमर्श की आवश्यकता है तथा जब पूरी दुनिया में महिला मुददों की बात की जा रही है तो आज पहले से ज्यादा इस बात को रेखांकित करना जरूरी है कि महिला बन्दियों के हितों की सुरक्षा के साथ ही पुलिस प्रशासन, जेल प्रशासन और अदालतों में लैंगिक भेदभाव को चिन्हित किया जाय और यहां मौजूद कर्मचारियों को इसके प्रति संवेदनशील बनाया जाय। इसके साथ ही अदालतों की लम्बी चलने वाली न्यायिक प्रक्रिया को त्वरित किया जाय। अंग्रेजों के जमाने से चले आ रहे जेल नियमों में बदलाव करने की आज सबसे अधिक आवश्यकता है। **- गांव के लोग**

(चन्द्रकला, सामाजिक राजनीतिक कार्यकर्ता हैं।)

भूल सुधार

सर्वोदय जगत के दो अंकों, क्रमशः 1-30 अप्रैल, 2021 के पृष्ठ संख्या 26 और 1-31 मई 2021 के पृष्ठ संख्या 23 पर विख्यात कथाकार और इतिहासकार श्री प्रियंवद का आलेख 'भारतीय राजनीति का हालिया आख्यान' प्रकाशित है। क्रमशः दो अंकों की शृंखला में प्रकाशित उक्त आलेख हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित श्री प्रियंवद की लिखी पुस्तक 'भारतीय राजनीति के दो आख्यान' के प्रथम आख्यान 'गांधी, नेहरू, सुभाष और वामपंथ' से लिया गया है। इसके लिए हम लेखक और प्रकाशक के आभारी हैं। यह सूचना प्रकाशित आलेख के साथ नहीं दी जा सकी थी, इसका हमें खेद है। **-सं.**

अफगानिस्तान में प्रेम और युद्ध

❑ फराह स्टॉकमैन

अफगानिस्तान में तालिबान के ताकतवर होने से फरीद जैसे दुभाषियों का जीवन संकट में है, जिन्होंने पश्चिम को, उस खूबसूरत पर युद्धजर्जर देश के बारे में बताया। अफगानिस्तान में मैंने हर दुभाषिये को परंपरा-विरोधी पाया है, जो प्रेम करता है और अपनी दुल्हन खुद चुनता है।

पिछले सप्ताह जब मैं अपनी बेटी को उसकी खेल प्रतियोगिता के लिए ले जा रही थी, तभी मेरे मोबाइल पर मैसेज आया, 'अफगानिस्तान के हालात दिनोंदिन खराब होते जा रहे हैं। तालिबान जानते हैं कि मैं आप जैसे लोगों के साथ सहयोग कर रहा हूं। लिहाजा अगर संभव हो, तो मुझे यहां से निकालकर अमेरिका ले आने के बारे में अपनी संस्था से बात कीजिए।' इधर वर्षों से फरीद से बात नहीं हुई थी। वर्ष 2007 में मैंने अफगानिस्तान के गर्देज शहर तक जाने के लिए उसकी मदद ली थी, क्योंकि मुझे वहां के एक लड़ाका सरदार पर रिपोर्ट लिखनी थी। गर्देज के रास्ते में हमें तूफान का सामना करना पड़ा था, लेकिन एक पहाड़ी दर्रे में कार चलाते हुए वह बेफिक्र था। एक पुराने बाजार से गुजरते हुए मैंने बुर्का ओढ़ लिया था, फिर भी मेरे आसपास भीड़ इकट्ठा हो गयी थी। फरीद ने एक टी शर्ट से अपना चेहरा ढक रखा था, ताकि कोई उसे पहचान न ले, क्योंकि एक अमेरिकी को अपने साथ लेकर उसने जोखिम तो उठाया ही था।

अब जब लगभग बीस साल बाद अमेरिकी फौज अफगानिस्तान छोड़कर जा रही है और तालिबान ताकतवर होकर उभरे हैं, तब मुझे फरीद और उन लोगों की बहुत चिंता हो रही है, जिन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर बाहरी लोगों को अपना खूबसूरत लेकिन जर्जर देश दिखाया। पिछले कुछ वर्षों के दौरान अफगानिस्तान और इराक में सैकड़ों दुभाषिये मारे गये हैं, इनमें वे भी हैं, जो लंबे समय से वीजा से जुड़ी औपचारिकताओं में लगे थे।

राष्ट्रपति जो बाइडन ने कम से कम 16,000 उन अफगानों को सुरक्षित अफगानिस्तान से बाहर निकाल लाने का वादा किया, जिन्होंने पिछले दो दशक में वहां अमेरिकी प्रयासों में मदद की थी। अमेरिकी संसद ने अमेरिकी सेना के लिए दुभाषिये का काम करने वाले अफगानों को जल्दी और सुरक्षित रूप से अमेरिका ले आने से संबंधित एक बिल पास किया। पर यह स्पष्ट नहीं है कि विदेशी मीडिया या गैरलाभकारी संगठनों के लिए काम करने वाले फरीद जैसे लोग स्पेशल अमेरिकी वीजा के हकदार हैं या नहीं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि सबसे अधिक शिक्षित और पश्चिमी देशों के प्रति आकर्षित अफगान अगर अफगानिस्तान से निकल गये, तो उस देश का क्या होगा। अफगानिस्तान जैसे देश में दुभाषिये सबसे प्रभावशाली होते हैं। विदेशी पत्रकार अफगानिस्तान की पूरी सच्चाई जान पाते हैं, तो इसके पीछे फरीद जैसे लोगों का योगदान होता है। वहां हम लोगों की उपस्थिति से अफगानियों को भी भरोसा होता है कि दशकों के गृहयुद्ध के बाद अफगानिस्तान में नई सुबह होगी।

अफगानिस्तान में शादियां अमूमन परिवार द्वारा तय की जाती हैं। लेकिन वहां मैंने पाया है कि लगभग हर दुभाषिया अपनी पत्नी खुद चुनता है। इन दुभाषियों की प्रेम कहानी वस्तुतः परंपरा के खिलाफ विद्रोह ही है। मैंने यहां जिस पहले दुभाषिये की सेवा ली थी, उसे अपने पड़ोस की लड़की से प्रेम हो गया था। उसके माता-पिता को शादी के लिए वह लड़की मंजूर नहीं थी, तो उसने लंबी भूख हड़ताल के बाद उन्हें मना लिया। दूसरे दुभाषिये को कॉलेज की एक लड़की से प्रेम हो गया था। उसने उस लड़की के सामने शादी का प्रस्ताव रखा। अफगानिस्तान में यह एक ऐसा जुर्म था, जिसके लिए उसे फांसी हो सकती थी। लेकिन वह लड़की भी शादी के लिए राजी हो गयी। वह भी एक जुर्म था। उन दोनों ने न सिर्फ तीन साल अजनबियों की तरह बिताये, बल्कि उस दौरान शादी के लिए अपने परिजनों को राजी करने की योजना भी बनाते रहे।

तालिबान के दौर में मेरे सभी दुभाषिये वे छात्र होते थे, जिनके पास रोजगार की संभावना नहीं थी। पर अमेरिकी दखल के बाद अंग्रेजी जानने वाले अफगानों को पैसे की कमी नहीं हुई। एक दुभाषिये ने बताया था कि जब उसे पहला वेतन मिला, तो वह खुशी से अपनी दुल्हन चुनने के लिए गलियों में दौड़ पड़ा। पर किसी लड़की से उसकी दोस्ती नहीं थी, इसलिए वह गली में खड़ा होकर गुजरती औरतों को देखता रहा था। वर्ष 2001 में तालिबान को उखाड़ फेंकने का आनंद जल्दी ही पैसों की तलाश में बदल गया था, क्योंकि अफगानिस्तान कंगाल बन चुका था, अफगानिस्तान के हर दौरे पर मुझे दुभाषिये का प्रबंध करना पड़ता था, पुराने दुभाषिये को दूसरी अच्छी नौकरी मिल जाती थी। जिन अफगान प्रशासनिक अधिकारियों को महीने में 80 डॉलर मिलते थे, उन्हें विदेशी एनजीओ 1000 डॉलर महीना देने लगे। एक बार जब मैं अशरफ गनी के साथ लंच कर रही थी, तब वह राष्ट्रपति नहीं थे, तब उन्होंने शिकायती लहजे में कहा था कि विदेशी लोग अफगानिस्तान के बेहतरीन प्रशासनिक अधिकारियों को खरीद ले रहे हैं।

मैं 2011 में जब आखिरी बार अफगानिस्तान गयी थी, तो कोई मेरा दुभाषिया बनना नहीं चाहता था। बड़ी मुश्किल से जो युवा तैयार हुआ, उसने भी मुझे पाकिस्तान में रह रही अपनी धनी प्रेमिका के बारे में बताया, जबकि वह शादीशुदा था। फरीद का मैसेज मिलने पर मैं सोचने लगी कि प्रेमी स्वभाव का वह युवा कितना बदल गया है। प्रेम और पैसे के पीछे भागते इन विद्रोही अफगान युवाओं का अब क्या होगा? और अफगानिस्तान को एक आधुनिक देश बनाने के सपने का भी क्या होगा? **-अमर उजाला**

अब साबरमती आश्रम की बारी

❑ रामचंद्र गुहा

मैं पहली बार 1979 में अहमदाबाद गया था और उसके बाद के दशक में पेशेवर और व्यक्तिगत, दोनों कारणों से मेरा अक्सर वहां जाना हुआ। उसके बाद मैंने गांधी पर शोध शुरू किया और इस शहर से मेरा लगाव और गहरा हो गया। 2002 के भीषण दंगों के बाद उसी साल गर्मियों में मेरा वहां जाना हुआ और स्वाभाविक रूप से मैं साबरमती आश्रम भी गया। वहां मैंने कुछ वक्त एक ट्रस्टी के साथ बातचीत में भी बिताया। शांत और संकोची स्वभाव के इस ट्रस्टी ने गांधी की सेवा में तीस बरस बिताये थे। हमारी बातचीत के दौरान उन्होंने मुझसे कहा था, 2002 के गुजरात के दंगे गांधी की 'दूसरी हत्या' थे। यह दंगे मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी के कार्यकाल में हुए थे, जो पूरी तरह से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा शिक्षित हैं, एक ऐसा संगठन जिसकी सांप्रदायिक, जेनोफोबिक (अज्ञात भय से ग्रस्त) विचारधारा स्वयं गांधी के विशाल और खुले विचारों वाली विश्वदृष्टि के बिल्कुल विपरीत है।

मोदी आरएसएस के सरसंघचालक एम एस गोलवलकर की वंदना करते हुए बड़े हुए हैं, जिनकी गांधी के प्रति घृणा जग जाहिर है। दिसंबर, 1947 में दिये एक भाषण में गोलवलकर ने टिप्पणी की : 'महात्मा गांधी अब और गुमराह नहीं कर सकते। हमारे पास वह साधन है, जिससे ऐसे लोगों को तुरंत चुप कराया जा सकता है, लेकिन यह हमारी परंपरा है कि हम हिन्दुओं से दुश्मनी न रखें। हमें मजबूर किया गया, तो हमें भी उस रास्ते का सहारा लेना पड़ेगा।'

मोदी के लिए गोलवलकर 'पूजनीय श्री गुरुजी' थे। अपने करियर के बड़े हिस्से में उन्होंने गोलवलकर के प्रति भारी सम्मान व्यक्त किया है, जबकि गांधी के बारे में शायद ही कभी सोचा। मुख्यमंत्री के कार्यकाल के दौरान नरेन्द्र मोदी यदा-कदा साबरमती आश्रम जाते थे। हालांकि प्रधानमंत्री बनने के बाद इस स्थान के प्रति उनकी दिलचस्पी बढ़ गयी। अन्य लोगों के अलावा जापान और इस्राइल के प्रधानमंत्रियों और चीन तथा अमेरिका के राष्ट्रपतियों के प्रवास के दौरान वह खुद उनके साथ गांधी के आश्रम तक गये।

गांधी के साथ सार्वजनिक रूप से जुड़ने की प्रधानमंत्री की नई-नई इच्छा के बारे में कोई क्या कह सकता है? ऐसा प्रतीत होता है कि मोदी की व्यक्तिगत गौरव की इच्छा ने पुरानी राजनीतिक वफादारियों और वैचारिक जुड़ाव को खत्म कर दिया है। जबकि गांधी के बारे में आरएसएस की प्रतिक्रिया मिली-जुली है। मोदी भक्त सोशल मीडिया में निर्लज्जता के साथ गांधी का विरोध करते हैं। मगर खुद मोदी जानते हैं कि समकालीन शब्दावली में कहें तो गांधी पूरी दुनिया में सर्वाधिक दिखाई देने वाला और सबसे ज्यादा सराहा जाने वाला 'भारतीय ब्रांड' बने रहेंगे। इसीलिए फिर चाहे जापान, चीन, इस्राइल या फ्रांस हो या अमेरिका या रूस या जर्मनी, यदि मोदी अपनी कोई छाप छोड़ना चाहते हैं, तो उन्हें गांधी को अपने साथ रखना ही होगा।

प्रधानमंत्री बनने के बाद साबरमती आश्रम में उनकी दिलचस्पी के बावजूद गांधी और मोदी के बीच नैतिक और वैचारिक दूरी शायद कभी खत्म नहीं हो सकती। वह ऐसे प्रधानमंत्री हैं, जिनकी पार्टी के तीन सौ लोकसभा सांसदों में एक भी मुस्लिम नहीं है, जिनकी सरकार मुस्लिमों को कलंकित करने वाला भेदभावपूर्ण कानून पारित करती है। यह ऐसी राजनीति है, सांप्रदायिक सौहार्द की हिमायत करने वाले संत गांधी, जिन्दगी भर जिसका विरोध करते रहे। एक ऐसा शख्स, जिसने अपने व्यक्तिगत इतिहास को महिमामंडित किया, जिसकी सरकार ने सुनियोजित ढंग से आर्थिक, स्वास्थ्य और हर तरह के आंकड़ों के साथ छेड़छाड़ की, क्या वह उस संत को प्रतिस्थापित कर सकता है, जिसने सत्यमेव जयते का उद्घोष

गांधी ने कहा था, मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। मोदी के उलट उन्हें अपने नाम के स्टेडियम की जरूरत नहीं पड़ी या फिर राजधानियों का कायाकल्प नहीं करना पड़ा, ताकि अतीत के शासकों की छवियां धुंधली पड़ जायें और उनकी छवि उभर जाये और इतिहास में उनका नाम दर्ज हो सके। साबरमती आश्रम आज जैसा है, गांधी क्या चाहते थे, उस लिहाज से एकदम सही है। गांधी के समय की आकर्षक कम ऊंचाई की इमारतें, पेड़, पक्षी, शुल्क मुक्त प्रवेश, खाकी वर्दीधारी और राइफलों या बेंत से लैस पुलिसकर्मियों की गैरमौजूदगी, नदी का नजारा, ये सब इस जगह को खास बना देते हैं, जिसकी आज भारत के अन्य स्मारकों में कमी है। गांधी ने जो पांच आश्रम स्थापित किये थे, उनमें से दो दक्षिण अफ्रीका में और तीन भारत में थे और इन सबमें साबरमती निस्संदेह सबसे महत्त्वपूर्ण है। वर्षों से पूरे भारत और दुनिया भर से लाखों लोग यहां आते हैं। कोई भी यहां की खूबसूरती और आसपास की सादगी तथा इसकी ऐतिहासिकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

किया था? वास्तव में, इस शासन का झूठ और विघटन इतना सर्वव्यापी है कि एक लेखक जिन्हें मैं जानता हूं, कहते हैं, 'भाजपा का आदर्श वाक्य 'असत्यमेव जयते' होना चाहिए।' गांधी का अर्थ था सत्य, पारदर्शिता और

धार्मिक बहुलतावाद। ढकोसला, प्रच्छन्नता और बहुसंख्यकवाद, इनका संबंध मोदी से है। फिर बाद वाला पूर्व के साथ किसी भी रिश्ते का दावा कैसे कर सकता है?

गांधी ने कहा था, मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। मोदी के उलट उन्हें अपने नाम के स्टेडियम की जरूरत नहीं पड़ी या फिर राजधानियों का कायाकल्प नहीं करना पड़ा, ताकि अतीत के शासकों की छवियां धुंधली पड़ जायें और उनकी छवि उभर जाये और इतिहास में उनका नाम दर्ज हो सके। साबरमती आश्रम आज जैसा है, गांधी क्या चाहते थे, उस लिहाज से एकदम सही है। गांधी के समय की आकर्षक कम ऊंचाई की इमारतें, पेड़, पक्षी, शुल्क मुक्त प्रवेश, खाकी वर्दीधारी और राइफलों या बेंत से लैस पुलिसकर्मियों की गैरमौजूदगी, नदी का नजारा, ये सब इस जगह को खास बना देते हैं, जिसकी आज भारत के अन्य स्मारकों में कमी है।

गांधी ने जो पांच आश्रम स्थापित किये थे, उनमें से दो दक्षिण अफ्रीका में और तीन भारत में थे और इन सबमें साबरमती निस्संदेह सबसे महत्त्वपूर्ण है। वर्षों से पूरे भारत और दुनिया भर से लाखों लोग यहां आते हैं। कोई भी यहां की खूबसूरती और आसपास की सादगी तथा इसकी ऐतिहासिकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

एक ऐसी सत्ता, जो अपनी सौंदर्यवादी बर्बरता और स्मारकवाद के लिए जानी जाती हो, वह यदि साबरमती आश्रम के संदर्भ में विश्व स्तरीय शब्द का इस्तेमाल करे, तो रीढ़ में कंपकपी होने लगती है। इसके लिए जिस आर्किटेक्ट बिमल पटेल को चुना गया है, उनका काम कुछ खास नहीं है। उनकी ठंडी, कंकरीट की संरचनाएं गांधी के साबरमती और सेवाग्राम आश्रमों के घरों और आवासों से मेल नहीं खातीं। संभवतः बिमल पटेल अकेले ऐसे आर्किटेक्ट हैं, जिनके बारे में प्रधानमंत्री ने सुन रखा है। दिल्ली, वाराणसी और अहमदाबाद की सरकारी परियोजनाओं की तरह साबरमती आश्रम के कायाकल्प की परियोजना पटेल को तकरीबन स्वचालित ढंग से ही दे दी गयी। मोदी ने इस परियोजना से गुजरात के कुछ नौकरशाहों को भी जोड़ा है, जिन पर वह व्यक्तिगत तौर पर भरोसा करते हैं।

अहमदाबाद के एक साथी ने मजाक किया कि सौभाग्य से हमारे यहां शायद कभी भी एक देश, एक पार्टी न हो, लेकिन हम एक देश, एक आर्किटेक्ट की ओर बढ़ रहे हैं। यदि एक ही आर्किटेक्ट को सारे प्रतिष्ठापूर्ण सरकारी प्रोजेक्ट मिल रहे हों, जिसके लिए करदाताओं का पैसा जाता है, तब निश्चित रूप से कोई समस्या है। वास्तव में सिर्फ अधिनायकवादी देशों में ही खास नेताओं के साथ खास आर्किटेक्ट होते हैं। प्राचीन मंदिरों के एक शहर, एक आधुनिक राजधानी और गांधी के आश्रम को फिर से डिजाइन करने के लिए एक ही व्यक्ति को विशिष्ट रूप से योग्य पाया गया है। यह मोदी शासन के भाई-भतीजावाद और वंशवाद पर एक टिप्पणी है। भारतीय वास्तुकला और स्वयं भारत इससे बेहतर का हकदार है।

यह दुखद है कि साबरमती आश्रम को संचालित करने वाले ट्रस्ट में आज उम्रदराज पुरुष और महिलाएं हैं और वे सभी गुजरात में रहते हैं और वे भय के कारण खुलकर बोल नहीं सकते, क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें और उनके परिजनों को सरकार प्रताड़ित कर सकती है। मोदी महात्मा से प्रेम या सम्मान की वजह से साबरमती का 'पुनर्विकास' नहीं कर रहे हैं, बल्कि वह अपने अतीत को फिर से लिखना चाहते हैं। नई दिल्ली में चल रही सेंट्रल विस्टा परियोजना की व्यापक रूप से आलोचना हो चुकी है। हालांकि नैतिकता के लिहाज से साबरमती आश्रम की प्रस्तावित लूट कहीं अधिक परेशान करने वाली है। एक निर्वाचित प्रधानमंत्री के रूप में, मोदी के पास राजधानी में सार्वजनिक भूमि पर संरचनाएं, चाहे वह कितनी भी बदसूरत और महंगी हो, खड़ी करने की कुछ वैधता है। साबरमती का मामला बिल्कुल अलग है। साबरमती आश्रम और गांधी, अहमदाबाद के नहीं, गुजरात के नहीं, यहां तक कि भारत के भी नहीं, बल्कि जन्म लेने वाले या अजन्मे हर इंसान के हैं। एक राजनेता, जिसका पूरा जीवन गांधी के खिलाफ रहा है और एक वास्तुकार, जिसकी प्रमुख योग्यता उस राजनेता से निकटता है, उसे महात्मा से जुड़े सबसे पवित्र स्थानों के साथ खिलवाड़ करने का कोई अधिकार नहीं है। ❑

यह दुखद है कि साबरमती आश्रम को संचालित करने वाले ट्रस्ट में आज उम्रदराज पुरुष और महिलाएं हैं और वे सभी गुजरात में रहते हैं और वे भय के कारण खुलकर बोल नहीं सकते, क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें और उनके परिजनों को सरकार प्रताड़ित कर सकती है। मोदी महात्मा से प्रेम या सम्मान की वजह से साबरमती का 'पुनर्विकास' नहीं कर रहे हैं, बल्कि वह अपने अतीत को फिर से लिखना चाहते हैं। नई दिल्ली में चल रही सेंट्रल विस्टा परियोजना की व्यापक रूप से आलोचना हो चुकी है। हालांकि नैतिकता के लिहाज से साबरमती आश्रम की प्रस्तावित लूट कहीं अधिक परेशान करने वाली है। एक निर्वाचित प्रधानमंत्री के रूप में, मोदी के पास राजधानी में सार्वजनिक भूमि पर संरचनाएं, चाहे वह कितनी भी बदसूरत और महंगी हो, खड़ी करने की कुछ वैधता है। साबरमती का मामला बिल्कुल अलग है। साबरमती आश्रम और गांधी, अहमदाबाद के नहीं, गुजरात के नहीं, यहां तक कि भारत के भी नहीं, बल्कि जन्म लेने वाले या अजन्मे हर इंसान के हैं। एक राजनेता, जिसका पूरा जीवन गांधी के खिलाफ रहा है और एक वास्तुकार, जिसकी प्रमुख योग्यता उस राजनेता से निकटता है, उसे महात्मा से जुड़े सबसे पवित्र स्थानों के साथ खिलवाड़ करने का कोई अधिकार नहीं है।

कोविड से हुई मौतों के सटीक आंकड़े नदारद

(प्रश्नम का सर्वे)

❑ राजेश जैन

कोविड-19 महामारी की दूसरी लहर ने भारत को एकदम तबाह कर दिया है. इस दौरान हर किसी ने दर्द, विपत्ति और पीड़ा की कहानियां देखी-सुनी हैं. ऐसे आंकड़े भी हैं, जो इन कहानियों से जुड़े हैं। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक कोविड के कारण करीब तीन लाख मौतें हुईं. द इकोनॉमिस्ट मैगजीन ने अपने स्तर पर 'अतिरिक्त मौतों के मॉडल' का इस्तेमाल करते हुए अनुमान लगाया है कि केवल इसी साल यानी 2021 में भारत में कोविड-19 के कारण लगभग 10 लाख मौतें हुई हैं. न्यूयॉर्क टाइम्स का कहना है कि उसने 'दर्जनों विशेषज्ञों' से परामर्श किया है और अनुमान लगाया है कि भारत में कोविड-19 के कारण 16 लाख मौतें हुई होंगी. देश में महामारी के वास्तविक असर का अनुमान लगाने की अन्य कोशिशें भी जारी हैं. उन भारतीयों की सटीक संख्या पता लगा पाना काफी मुश्किल है, जिन्होंने नोवेल कोरोना वायरस के कारण दम तोड़ दिया है. दरअसल, किसी को भी इसका अंदाजा नहीं है कि भारतीयों और उनके परिवारों को कोविड ने वास्तव में कितनी क्षति पहुंचाई है.

कोविड-19 का असर लाखों भारतीयों के लिए एक व्यक्तिगत कहानी है. उन्होंने अपने परिवार या अपने गांव में किसी-न-किसी को कोविड के कारण खो दिया है. भारत में कोविड ने व्यक्तिगत स्तर पर परिवारों को किस हद तक प्रभावित किया है? 'प्रश्नम' ने इसी बात का पता लगाने का फैसला किया. हमने छह बड़े हिंदी भाषी राज्यों को चुना. इन छह राज्यों के 1,256 विधानसभा क्षेत्रों में से हमने 967 ग्रामीण निर्वाचन क्षेत्रों (जनगणना में निर्धारित) की पहचान की. प्रश्नम ने साइंटिफिक, रैंडम और स्वीकृत सैंपलिंग टेक्नीक का इस्तेमाल करते हुए इन निर्वाचन क्षेत्रों के कई गांवों के लोगों को सर्वे के लिए चुना.

उत्तरदाता प्रोफाइल- 14,881 वयस्क भारतीयों ने इस सर्वेक्षण के लिए जवाब दिया. वे छह राज्यों—बिहार, हरियाणा, झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश के 229 जिलों से संबंधित थे. इनमें 70 फीसदी पुरुष और 30 फीसदी महिलाएं थीं. 52 प्रतिशत युवा (40 वर्ष से कम), 36 प्रतिशत प्रौढ़ आयु वर्ग और 12 प्रतिशत बुजुर्ग (60 वर्ष से ऊपर) इस सर्वे में शामिल हुए.

हमने इन लोगों से दो सवाल पूछे.

पहला सवाल- क्या आपने पिछले तीन महीनों में अपने परिवार या गांव में किसी को कोरोना वायरस के कारण खो दिया है?

दूसरा सवाल- आपको क्या लगता है कि आपके नुकसान के लिए कौन जिम्मेदार है? (केवल उन्हीं लोगों से पूछा गया जिन्होंने कहा कि उन्होंने किसी को गंवाया है)

भारत में एंटीबॉडी की व्यापकता का अनुमान लगाने के लिए सीएसआईआर की तरफ से किए जाने वाले कुछ सीरो सर्वेक्षणों में देश भर के 10,000 लोगों के सैंपल साइज का उपयोग किया गया था. अन्य देशों में भी इसी तरह के सर्वेक्षणों में पूरे देश के लिए दो से तीन हजार लोगों का सैंपल साइज रखा गया. प्रश्नम का सर्वे भारत में हुआ एक अनूठा सर्वेक्षण है, जिसमें सिर्फ छह राज्यों में लगभग 15,000 लोगों का सैंपल साइज रखा गया और हर ग्रामीण विधानसभा क्षेत्र को कवर किया गया.

सर्वेक्षण में शामिल 17 फीसदी लोगों ने बताया कि उन्होंने कोविड-19 के कारण किसी न किसी को गंवा दिया है. इन छह राज्यों में कुल मिलाकर करीब 10 करोड़ परिवार हैं. सर्वेक्षण बताता है कि इन परिवारों के हर छह में से कम से कम एक व्यक्ति ने कोविड-19 के कारण किसी न किसी को खोया है. लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि 1.7 करोड़ लोग मारे गए हैं. सांख्यिकी के लिहाज से जब इन नतीजों की गणना पूरी आबादी के हिसाब से की जाती है तो आंकड़े ओवरलैप होंगे और इनका दोहराव होगा. ऐसे में कोई इस नतीजे पर नहीं पहुंच सकता कि छह राज्यों में 1.7 करोड़ लोग मारे गए हैं.

इन निष्कर्षों को मार्च 2021 में शिकागो यूनिवर्सिटी की तरफ से अमेरिका में किए गए एक ऐसे ही सर्वेक्षण के संदर्भ में देखा जा सकता है, जो यह बताता है कि 19 प्रतिशत अमेरिकियों के करीबी दोस्तों या रिश्तेदारों की मौत कोविड-19 के कारण हुई है. अमेरिकी सर्वे के नतीजे भारत में किए गए सर्वे से काफी मिलते-जुलते पाए गये हैं, करीब इतने ही प्रतिशत लोगों का कहना है कि उन्होंने अपने परिवार में किसी न किसी को खोया है. इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई यह मान लेता है कि अमेरिका ने भारत की तुलना में अधिक सटीक तौर पर कोविड-19 मौतों का आंकड़ा दर्ज किया है तो भारत में सही कोविड मृत्यु दर अमेरिका के समान ही होनी चाहिए.

अमेरिका में प्रति 10 लाख लोगों पर कोविड मृत्यु दर 1,800 है. भारत में प्रति 10 लाख लोगों पर मृत्यु दर 230 है. यदि कोई भारत के लिए प्रति 10 लाख लोगों पर अमेरिका की मृत्यु दर के हिसाब से अनुमान लगाए तो भारत में कोविड-19 मौतों का अनुमानित आंकड़ा 25 लाख के करीब होगा. दिलचस्प बात यह है कि लगभग हर राज्य ने करीब-करीब समान आंकड़ों की सूचना दी है, सिर्फ मध्य प्रदेश को छोड़कर, जहां आंकड़ा कुछ ज्यादा नजर आ रहा है.

मोदी सरकार और 'नियति' जिम्मेदार

कोविड-19 के कारण जिन लोगों को निजी तौर पर क्षति हुई है, उन्होंने इसके लिए मुख्यतः नरेंद्र मोदी सरकार को जिम्मेदार माना. लेकिन लगभग इतनी ही संख्या में लोगों ने इसे अपनी नियति बताया. अलग-अलग राज्यों में प्रतिक्रियाओं में खासा अंतर दिखा. लेकिन मोटे तौर पर इस पूरी तबाही के लिए राज्य सरकारों को उतना दोषी नहीं माना गया, जितना केंद्र सरकार या 'नियति' को जिम्मेदार ठहराया गया.

उत्तर प्रदेश के लोगों की नजर में उनको पहुंची क्षति के लिए मोदी सरकार जिम्मेदार है, जबकि हरियाणा और राजस्थान के लोग इसकी वजह अपने दुर्भाग्य को मानते हैं. पारदर्शिता और अखंडता के अपने सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए प्रश्नम ने विश्लेषकों और शोधकर्ताओं की तरफ से सत्यापन और आगे विश्लेषण के लिए उन्हें इस सर्वेक्षण का पूरा रॉ डाटा उपलब्ध कराया है. **(द प्रिंट)**

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2023
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

मैं तुम्हारा कवि हूं

❑ रमाशंकर विद्रोही

मैं साइमन न्याय के कटघरे में खड़ा हूं
प्रकृति और मनुष्य मेरी गवाही दें
में वहां से बोल रहा हूं, जहां
मोहनजोदड़ो के तालाब की आखिरी सीढ़ी है
जिस पर एक औरत की जली हुई लाश पड़ी है
और तालाब में इंसानों की हड्डियां बिखरी पड़ी हैं
इसी तरह से
एक औरत की जली हुई लाश
बेबीलोनिया में भी मिल जायेगी
और इंसानों की बिखरी हुई हड्डियां
मेसोपोटामिया में भी
मैं सोचता हूं और बार बार सोचता हूं
ताकि याद आ सके -
प्राचीन सभ्यताओं के मुहाने पर
एक औरत की जली हुई लाश मिलती है और
इंसानों की बिखरी हुई हड्डियां
इसका सिलसिला सीरिया की चट्टानों से लेकर
बंगाल के मैदानों तक चला जाता है
और जो कान्हा के जंगलों से लेकर
सवाना के वनों तक फैला हुआ है।
एक औरत
जो मां हो सकती है, बहन हो सकती है,
बेटी हो सकती है, बीवी हो सकती है,
मैं कहता हूं हट जाओ
मेरे सामने से
मेरा खून जल रहा है,
मेरा कलेजा कलकला रहा है,
मेरी देह सुलग रही है,
मेरी मां को, मेरी बीवी को,
मेरी बहन को, मेरी बेटी को,
मारा गया है, जलाया गया है
उनकी आत्माएं आर्तनाद कर रही हैं
आसमान में।
मैं इस औरत की जली हुई लाश
पर सिर पटककर
जान दे देता
अगर मेरी एक बेटी न होती तो!
और बेटी है कि कहती है -
पापा तुम बेवजह ही हम लड़कियों के बारे में
इतने भावुक होते हो
"हम लड़कियां तो लकड़ियां होती हैं,
जो बड़ी होने पर
चूल्हे में लगा दी जाती हैं"
और ये इंसान की बिखरी हुई हड्डियां
रोमन के गुलामों की भी हो सकती हैं और
बंगाल के जुलाहों की भी या फिर
वियतनामी, फिलिस्तीनी, बच्चों की
साम्राज्य आखिर साम्राज्य होता है
चाहे रोमन साम्राज्य हो, ब्रिटिश साम्राज्य हो
या अत्याधुनिक अमरीकी साम्राज्य
जिसका यही काम होता है कि
पहाड़ों पर पठारों पर नदी किनारे
सागर तीरे इंसानों की हड्डियां बिखेरना
जो इतिहास को सिर्फ तीन वाक्यों में
पूरा करने का दावा पेश करती है कि
हमने धरमती में शरारे भर दिये,
हमने धरती में शोले भड़का दिये,
हमने धरती पर इंसानों की हड्डियां बिखेर दीं!!
लेकिन, मैं इन इंसानों का वंशज इस बात की
प्रतिज्ञाओं के साथ जीता हूं कि
जाओ और कह दो सीरिया के गुलामों से
हम सारे गुलामों को इकट्ठा करेंगे
और एक दिन रोम आयेंगे जरूर
लेकिन, अब हम कहीं नहीं जायेंगे क्यूंकि
ठीक इसी तरह जब मैं कविता
आपको सुना रहा हूं,
रात दिन अमरीकी मजदूर
महान साम्राज्य के लिए कब्र खोद रहा है
और भारतीय मजदूर उसके पालतू चूहों के
बिलों में पानी भर रहा है।
एशिया से अफ्रीका तक जो घृणा की
आग लगी है,
वो आग बुझ नहीं सकती दोस्त!
क्योंकि वो आग;
वो आग एक औरत की
जली हुई लाश की आग है
वो आग इंसानों की
बिखरी हुई हड्डियों की आग है
ये लाश जली नहीं है, जलायी गयी है,
ये हड्डियां बिखरी नहीं हैं, बिखेरी गयी हैं,
ये आग लगी नहीं है, लगायी गयी है,
ये लड़ाई छिड़ी नहीं है, छेड़ी गयी है,
लेकिन कविता भी लिखी नहीं है,
लिखाई गयी है,
और जब कविता लिखी जाती है,
तो आग भड़क जाती है।
मैं कहता हूं तुम मुझे इस आग से बचाओ
मेरे लोगों!
तुम मेरे पूरब के लोगों,
मुझे इस आग से बचाओ!
जिनके सुंदर खेतों को
तलवार की नोकों से जोता गया,
जिनकी फसलों को
रथों के चक्कों तले रौंदा गया।
तुम पश्चिम के लोगों, मुझे इस आग से बचाओ!
जिनकी स्त्रियों को बाजारों में बेचा गया,
जिनके बच्चों को चिमनियों में झोंका गया।
तुम उत्तर के लोगों!
मुझे इस आग से बचाओ!
जिनके पुरखों की पीठ पर
पहाड़ लाद कर तोड़ा गया
तुम सुदूर दक्षिण के लोगों!
मुझे इस आग से बचाओ
जिनकी बस्तियों को दावाग्नि में झोंका गया,
जिनकी नावों को
अतल जलराशियों में डुबोया गया।
तुम वे सारे लोग मिलकर मुझे बचाओ!
जिसके खून के गारे से
पिरामिड बने, मीनारें बनीं, दीवारें बनीं,
क्योंकि मुझको बचाना उस औरत को बचाना है,
जिसकी लाश मोहनजोदड़ो के तालाब की
आखिरी सीढ़ी पर पड़ी है।
मुझको बचाना उन इंसानों को बचाना है,
जिनकी हड्डियां तालाब में बिखरी पड़ी हैं।
मुझको बचाना अपने पुरखों को बचाना है,
मुझको बचाना अपने बच्चों को बचाना है,
तुम मुझे बचाओ!
मैं तुम्हारा कवि हूं। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार